लिंग पुराण में शिवतत्त्व तथा उसकी उपासना

यह शैवमत का एक महत्त्वपूर्ण पुराण है। शिव पुराण की भाँति इसमें भी शिवतत्त्व की महिमा का विवेचन विस्तार के साथ हुआ है। परन्तु शिव पुराण की तरह इसका जन साधारण में उतना प्रचार नहीं हुआ। कारण यह है कि शिव पुराण प्राय: कथात्मक है और श्रोता एवं पाठक गण उसे अपेक्षाकृत आसानी से शीघ्र हृदयंगम कर लेते हैं जबकि लिंगपुराण में शैव-सिद्धान्तों का विवेचन शुष्क दार्शनिक रीति से किया गया है तथा उसके अन्दर कथाएँ ज्यादा नहीं हैं। नारद पुराण के अनुसार भगवान् शंकर ने अग्निलिंग में स्थित होकर अग्निकल्प की कथा का आश्रय ले धर्म आदि की सिद्धि के लिये ब्रह्माजी को जिस लिंग पुराण का उपदेश दिया था, उसका व्यासदेव ने दो भागों में बाँटकर (पूर्व एवं उत्तरभाग) प्रवचन किया है। अनेक प्रकार के उपाख्यानों से युक्त यह लिंग पुराण एकादश सहस्त्र श्लोकों से युक्त और भगवान् शिव की महिमा का सूचक है। यह सब पुराणों में श्रेष्ठ तथा त्रिलोकी का सारभूत है।

यच्च लिंगाभिधे तिष्ठन् वह्निलिंगे हरोऽभ्यधात्।
महयं धर्मादिसिद्ध्यर्थं अग्निकल्पकथाश्रयम्।।
तदेवव्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम्।
पुराणं लिंगमुदितं बह्वाख्यानविचित्रितम्।।
तदेकादशसाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम्।
परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये।। (नारद पु. पूर्वभाग 102/2-4)

कुछ विद्वानों ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या ब्रह्मा को सुनाया गया लिंग पुराण और व्यासजी का लिंग पुराण, जो हमें उपलब्ध है, दोनों एक ही हैं या भिन्न-भिन्न। इस प्रकार का प्रश्न उठाने का आधार यह है कि (1) वर्तमान में पाया जानेवाला लिंग पुराण 11000 श्लोकोंवाला न होकर 9185 श्लोकोंवाला है तथा (2) वर्तमान लिंग पुराण (1/2/1) के अनुसार इसकी कथा ईशानकल्प (न कि अग्नि कल्प) की है। इस समस्या का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि अग्नि एवं ईशान कल्पों को पर्याय मान लिये जायँ। ईशान अर्थात् भगवान् शिव का रूप अग्नि भी है। अत: इन्हें पर्याय मानने में कोई दार्शनिक कठिनाई प्रतीत नहीं होती। हम वर्तमान लिंग पुराण को ब्रह्मावाला ही मान कर चलेंगे।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण के प्रमुख देव भगवान् शिव हैं। उन्हें ही ब्रह्माण्ड की सर्वोच्च सत्ता, परम तत्त्व, ब्रह्म तथा परमेश्वर कहा गया है। प्रथम अध्याय में सूतजी भगवान् शंकर की वन्दना करते हुए कहते हैं कि जिसका तन शब्दब्रह्म है, जो साक्षात् शब्दब्रह्म का प्रकाशक है, जिसके अवयव अव्यक्त लक्षणोंवाले वर्ण हैं जो नाना रूपों में व्यक्त होते हैं, जो 'अ', 'उ' और 'म' वर्णों से बने हैं, जो स्थूल एवं सूक्ष्म हैं, जो परात्पर हैं, जो ओंकारस्वरूप हैं, जिसका मुख ऋग्वेद, जिह्वा सामवेद, ग्रीवा यजुर्वेद

और हृदय अथर्ववेद है, जो प्रधान एवं पुरुष से परे है, जो जन्म और मृत्यु से रहित है, जब वह तमोगुण से युक्त होता तो कालरुद्र, रजोगुण से ब्रह्मा, तथा सतोगुण से युक्त होने पर सर्वव्यापी विष्णु कहलाता, जब वह गुणों से रहित है तो महेश्वर कहलाता, जो प्रधान को आवृत्त कर सात रूपों में[1], फिर 16 रूपों में [2] और अन्त में 26 रूपों में [3] व्यक्त होता, जो सृष्टि, पालन एवं संहाररूपी लीला के लिये लिंगरूप धारण करता है, उसे न्यायपूर्वक प्रणाम कर लिंग पुराण का शुभारंभ करता हूँ।

शब्द ब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम्।।
अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं समजिह्वासमन्वितम्।।
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्।
प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्।।
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्वेनसर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वेमहेश्वरम्।।
प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाऽष्ठितं क्रमात्।
पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम्।।
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिंगरूपिणम्।
प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्येलिङ्गोद्भवं शुभम्।।

(लिंग पुराण पूर्वभाग/अध्याय 1/श्लोक 19-24)

इन 6 श्लोकों में ही भगवान् शिव की सभी विशेषताओं का समावेश कर दिया गया है। फिर भी शिव के स्वरूप का विस्तृत वर्णन इस पुराण में अनेक स्थलों पर मिलता है। अव्यक्त तत्त्व, जो रूप, रस, गंध, शब्द, और स्पर्श आदि से रहित, गुणरहित(निर्गुण), ध्रुव एवं अक्षय है, उसे शिव कहा जाता है।

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम्।
अगुणं ध्रुवमक्षय्यम् अलिङ्गं शिवलक्षणम्।। (लिंग पु. 1/3/2-3)

वे सभी जीवों के आदिकर्त्ता, रक्षक या पालक तथा संहारक हैं। इस कारण से महेश्वर ब्रह्मा के भी अधिपति हैं। वे शिव, सदाशिव, भव, विष्णु एवं ब्रह्मा के नाम से जाने जाते हैं क्योंकि वे ही सबकुछ हैं(लि. पु. 1/3/37-38)। शिव की प्रेरणा से प्रधान द्वारा उत्पन्न असंख्य ब्रह्माण्ड अस्तित्व

1-बुद्धि, अंहकार और पाँच तन्मात्रायें। 2-पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच महाभूत तथा मन। 3-ऊपर(1 और 2 में वर्णित) के 23 पदार्थ, प्रधान, जीव तथा पुरुष। जब इन 26 तत्त्वों में महेश्वर को जोड़ दिया जाय तो वे 27वें तत्त्व हो जाते हैं। वास्तव में महेश्वर ही इन 26 रूपों में व्यक्त हो रहा है।

रखते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र विराजमान हैं। पुनः अनेक कल्प भी सृष्टि में बीत चुके तथा भविष्य में होंगे। प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र परिवर्तित होते रहते हैं। परन्तु भगवान् शिव अनेक न होकर एक ही हैं।

असंख्याताश्च संक्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात्।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसंख्याताः पितामहाः।।
हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः।
प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु।। (लिंग पु. 1/4/54-55)

अर्थात्-प्रधान के माध्यम से रची गयी इस प्रकार की असंख्य सृष्टियाँ हैं। कल्प एवं उनके ब्रह्मा एवं विष्णु भी असंख्य हैं। परन्तु महेश्वर एक ही हैं। प्रधान से उत्पन्न प्रकृति की क्रियायें उनकी(शिव की) लीलाएँ हैं।

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि शम्भु निष्कल(निर्गुण) आत्मा हैं जो स्वेच्छा से शरीर धारण करते हैं। सभी भूतों को वे दयापूर्वक सुख प्रदान करते हैं इसीलिये उनका नाम शंकर है। वे सर्वव्यापी आत्मा हैं। जो लोग संसार के भय से(आवागमन के भय से) योग की शरण ले संसार की क्रियाओं तथा भोगों से उपराम और विरक्त हो चुके हैं, उनपर वे कृपा करते हैं।

निष्कलस्यात्मनः शम्भोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः।
शं रुद्रः सर्वभूतानांकरोतिघृणयायतः।।
शङ्करश्चाऽप्रयत्नेन तदात्मा योगविद्यया।
वैराग्यस्थं विरक्तस्य विमुक्तिर्यच्छमुच्यते।। (लिंग पु. 6/21-22)

विश्वरूप कल्प में ब्रह्माजी ने पुत्र की कामना से ईशान देव(शिव का एक रूप) की स्तुति की थी। इस स्तुति में उन्होंने शिवजी को अन्य कई विशेषणों के अलावा सभी प्रकार की विद्याओं के स्वामी, परमेश्वर, ब्रह्मा के भी अधिपति, ब्रह्म, ओंकारमूर्ति, देवों के स्वामी, जगत्कारण, वरदाता, सर्वभूतेश्वर आदि विशेषणों से भी युक्त माना है(लिंग पु. 1/16/6-15)।

भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि मेरे द्वारा प्रसूत प्रकृति तुम्हारा स्त्रोत है, वही विष्णु आदि देवों की स्वामिनी है। वह अजन्मा है तथा कई नामों-गौरी, माया, विद्या, प्रधान, प्रकृति, कृष्णा, हैमवती आदि-से पुकारी जाती है। यही विश्व में प्रजा की सृष्टि करती है। मैं अजन्मा और सर्वव्यापी हूँ। तुम उसे गायत्री समझो(लिंग पु. 1/16/32-35)। भगवान् शिव एवं उनकी माया दोनों अभिन्नरूप से स्थित हैं।

शिवलिंग की उत्पत्ति संबंधी प्रश्न किये जाने पर सूतजी ऋषियों को ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर हुई लड़ाई का उल्लेख करते हैं। जब वे दोनों अपने को बड़ा सिद्ध करने के प्रयास में लड़ रहे थे तभी दोनों के समक्ष पृथ्वी एवं आकाश को व्याप्त करते हुए एक अग्निमय स्तंभ(लिंग)

प्रकट हुआ। शिवमाया से मोहित होने के कारण वे दोनों उस लिंग के ओर-छोर का पता न लगा सके। तब उन दोनों ने लिंगरूप भगवान् को प्रणाम किया। तदनन्तर उस अग्नि स्तंभ से ओंकार की तेज ध्वनी निकली। विष्णुजी ने 'अ' वर्ण को स्तंभ के दाहिनी तरफ, वर्ण 'उ' को बाँयी तरफ तथा 'म' को उसके मध्य में देखा। स्तंभ के ऊपर से ओंकार का नाद गूँज रहा था। फिर सूतजी ने ओंकाररूप ब्रह्म का वर्णन करते हुए उससे वर्णों की उत्पत्ति का भी विवेचन किया। वे शब्द-ब्रह्म ही भगवान् शिव हैं।(लिंग पु. 1/17/3, 5, 33-38, 43-65, 80 आदि)

अग्निमय लिंग को देखकर भगवान् विष्णु ने जो स्तुति की उसमें उन्होंने शिवजी को वरदाता, लिंगरूप, सर्वव्यापी, अनन्त, अनामय, शाश्वत, वरिष्ठ, योगी, रक्षक, भक्षक, सतत सृष्टि करनेवाला, मृत्यु, भस्मधारी, गौरवर्ण, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के कारण, आसानी से भवसागर तारनेवाला, पिनाकधारी, नागों का कंकण धारण करनेवाला, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, रजोगुण से रहित, प्रधान, चतुर्व्युह, सृष्टि एवं प्रलय के हेतु, मुक्तिस्वरूप, मुक्तिदाता, आत्मा, विष्णु, ओंकारस्वरूप, आदिदेव, सर्व, अजन्मा, प्रजापति, महादेव, सत्य, ब्रह्मा, देवेश्वर, सर्वज्ञ, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य, नीलकंठ, ईश्वर, अर्द्धनारीश्वर, यशप्रदाता, शान्तिदाता तथा रामेश्वर आदि-आदि कहा है(लिंग पु. 1/18/4-6, 10-11, 13-16, 18-19, 21-31, 34 और 37)।

विष्णु की स्तुति(लिंग पु. 1/18/1-38) सुनकर भगवान् शिव कहते हैं कि तुम दोनों(ब्रह्मा एवं विष्णु) पूर्वकाल में मेरे अंगों से पैदा हुए हो। ब्रह्मा दाहिने तथा तुम मेरे बायें अंग से प्रकट हुए थे(लिंग पु. 1/19/2-3)। अपनी भक्ति का वरदान देने के बाद पुनः विष्णुजी से वे कहते हैं कि तुम सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण हो। तुम इस चराचर जगत् की रक्षा करो।

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते!।
वत्स! वत्स! हरे! विष्णो! पालयैतच्चराचरम्।। (लिंग पु. 1/19/11)

भगवान् शिव के उपरोक्त कथन को तथ्यात्मक नहीं मानना चाहिये बल्कि उसे वरदानात्मक माना जाना चाहिये। क्योंकि यह कथन अव्यभिचारी भक्ति का वरदान देने के बाद व्यक्त किया गया है। अर्थात् इस कथन का अर्थ यह है कि भगवान् विष्णु को कल्पविशेष वा सृष्टिविशेष में सृजन, पालन एवं संहार का अधिकार दिया गया है। तथा उनके पालन के अधिकार को लागू करने का आदेश भी दिया गया है।

शिवमाया से मोहित होने के कारण(1/20/17-18) एक बार पुनः ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद शुरू हो गया। दोनों एक दूसरे के उदर में प्रवेश कर अनन्त सृष्टियों को देखकर वापस आ गये और आपस में श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर लड़ने की स्थिति में आ गये। उसी समय उन्हें भगवान् शिव के दर्शन हुए। उन्हें देखकर ब्रह्मा विस्मित हो विष्णुजी से उनका परिचय पूछते हैं। परिचय देते हुए विष्णु उन्हें सर्वश्रेष्ठ एवं महान् देव, वरदाता तथा जगद्गुरु आदि बताते हुए

उनकी स्तुति की सलाह देते हैं(लिंग पु. 1/20/95-97)।

तदनन्तर वे दोनों भगवान् शिव की स्तुति करते हैं। यह स्तुति वायुपुराण की स्तुति (1/24/90-164) से काफी कुछ मिलती है। इस स्तुति में शिव को कई प्रचलित विशेषणों के अलावा सांख्य एवं योग के अधिपति, वेदों तथा स्मृतियों के स्वामी, पुराणपुरुष, विद्या एवं व्रतों के स्वामी, मन्त्रों के स्रोत तथा स्वामी, पशुपति, लक्ष्मीपति, भूत, वर्तमान एवं भविष्य के स्वरूप, तपरूप, अणु एवं महत् रूपवाले, मोक्ष, बन्धन, नरक एवं स्वर्गरूप, गुणातीत, पुष्टिदाता, बुढ़ापारहित(जरासिद्ध), विश्वरूप, सर्वत्र हाथ-पैरवाला, अप्रतिम, शुद्ध, बुद्ध, दृश्य एवं अदृश्य, लिंगरूपधारी, अपरिमित, सर्वस्वरूप, दुर्गम, तर्क्य एवं अतर्क्य, प्रणव तथा प्रणव के स्वामी, सर्वभूतात्मा, नर-नारीरूप, अप्रमेय, रक्षक, प्रदीप्त एवं निर्गुण, कामनाओं को पूरा करनेवाला, प्रकृति से परे, मृत्युरहित, शरणागत को दिव्य भोग प्रदान करनेवाले इत्यादि विशेषणों से भी विभूषित किया गया है(लिं. पु. 1/21/2-87)। स्तुति के अन्त में कहा गया है कि वे असंख्य गुणों से युक्त हैं, उनकी गिनती नहीं हो सकती। भगवान् शिव के दर्शन से उन दोनों की माया समाप्त हो गयी और वे दोनों समझ गये कि भगवान् शिव से ही उन दोनों की उत्पत्ति हुई है(लिं. पु. 1/22/6)। पुनः शिव ने विष्णु को अपने चरणों की भक्ति, सृष्टि करने तथा अधिदेव होने का वरदान दिया(लिं. पु. 1/22/11-12)।

ब्रह्माजी की सलाह से देवदारु वन के ऋषियों ने भगवान् शिव की लिंगरूप में उपासना की। उपासना के फलस्वरूप शिव के प्रकट होने पर उन्होंने उनकी स्तुति की। इस स्तुति में वे भगवान् शिव को विश्व का कारण, भूतपति, अनन्त बल-वीर्यसम्पन्न, अव्यय, गंगाधारी, त्रिनेत्र, त्रिशूलधारी, परमात्मा, संहारकर्त्ता, वेदों के प्रधान देवता, भूत, वर्तमान तथा भविष्य के सभी चराचरों का स्रष्टा आदि कहा है(लिं. पु. 1/31/37-43)। जब वे ऋषि भगवान् के मौलिक स्वरूप को देखते हैं तो पुनः उनकी स्तुति करते हैं(लिं. पु. 1/32/1-16)। इस स्तुति में अबतक जिन विशेषणों की चर्चा हम कर चुके हैं उन्हीं में से कुछ का प्रयोग हुआ है। एकाध नये विशेषणों का भी प्रयोग हुआ है जिनकी चर्चा महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

ब्रह्मा के पुत्र तण्डि ने भगवान् शिव की 1008 नामों[1] से स्तुति(लिं. पु. 1/65/54-168) कर गणाध्यक्ष का पद प्राप्त किया था। इस सहस्रनाम में शिव को अनेक गुणों से युक्त बताया गया है। ये नाम उनके गुणों के आधार पर ही रखे गये हैं। उदाहरण के लिये हम कुछ श्लोकों को लें-

1. यद्यपि ये नाम एक हजार आठ से कम हैं। परन्तु अगर हम(1/65/61, 75 और 87) इन तीनों श्लोकों के अन्तर्गत आये 'मतः' शब्द को व्यक्तिवाचक नाम मान लें तो संख्या पूरी हो सकती है। पुनः बहुत से नाम एक समान हैं(अर्थात् एक ही नाम बार-बार आया है), अतः उन्हें जबतक हम अलग-अलग ढंग से नहीं समझेंगे या व्याख्या करेंगे तबतक नामों की संख्या पूरी नहीं होगी। लिंग पुराण की 'शिवतोषिनी' टीका में समान नामों की अलग-अलग व्याख्या की गयी है।

लोककर्त्ता पशुपतिर्महाकर्त्ता ह्यधोक्षजः।
अक्षरं परमं ब्रह्म बलवांश्छुक्र एव च।।
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं प्रजाद्वारं त्रिविष्टपः।।
देवासुरेश्वरो विष्णुर्देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मा स्वयं भवः।।
व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्तकेशश्च श्रीमाञ्छ्रीवर्धनोजगत्।।

(लिं पु. 1/65/101, 158, 162 तथा 168)

अर्थात्- इन श्लोकों में भगवान् शिव को लोकों का कर्त्ता, पशुपति, महान् कर्त्ता, अधोक्षज (अर्थात् जो विष्णु है या उनके तुल्य है), अक्षर (अविनाशी), परम (महान्), ब्रह्म, बलवान्, शुक्र, सदसद्, व्यक्त (दृश्य), अव्यक्त (अदृश्य), पितृ (पिता), मातृ (माता), पितामह (दादा), स्वर्गद्वार, मोक्षद्वार, प्रजाद्वार (जो भक्तों के प्रवेश का द्वार है), त्रिविष्टप (स्वर्ग), देवासुरेश्वर (देव एवं असुरों के स्वामी), विष्णु, देवासुर महेश्वर (देव एवं असुरों के महान् ईश्वर), सर्वदेवमय (सभी देवताओं से अभिन्न), स्वयंभू (अपने आप ही जो पैदा हुआ हो), व्रताधिप (व्रतों का स्वामी), परम (सर्वोच्च सत्ता), ब्रह्म, मुक्तानां परमा गति (मुक्त पुरुषों का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य), विमुक्त, मुक्तकेश (जिसके बाल खुले हुए हों), श्रीमान् (ऐश्वर्यमान्), श्रीवर्धन (जो संपत्ति एवं ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है) तथा जगत् (विश्व) कहा गया है।

सृष्टि - प्रक्रिया को समझाते हुए सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि भगवान् शिव प्रकृति एवं पुरुष से परे परमात्मा हैं। उसी परमात्मा से परम कारण 'अव्यक्त', जिसे विचारक लोग प्रधान या प्रकृति कहते हैं, पैदा हुआ। यह प्रधान ही जगत् की उत्पत्ति का स्रोत है। यह महान् शाश्वत ब्रह्म है, यह सभी जीवों का भौतिक शरीर है, यह सभी भूतों का विग्रह है तथा ईश्वर की आज्ञा से ही (क्रिया के लिये) प्रेरित होता है। प्रारंभ में प्रधान ब्रह्म के रूप में ही स्थित होता है। इसका न आदि है और न ही अन्त। यह अजन्मा और सूक्ष्म है जो तीन गुणों से युक्त है। यह विश्व की सृष्टि का स्रोत होने के साथ ही शाश्वत भी है। (प्रारंभ में) यह न तो व्यक्त था और न ही ज्ञेय था।

महेश्वरो महादेवः प्रकृतेः पुरुषस्यच।
परत्वे संस्थितो देवः परमात्मा मुनीश्वराः!।।
अव्यक्तं चेश्वरात्तस्मादभवत्कारणं परम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः।।
जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्।
विग्रहः सर्वभूतानामीश्वराज्ञाप्रचोदितम्।।

अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्।
अप्रकाशमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत।। (लिंग पु. 1/70/2-3, 5-6)

यहाँ पर प्रकृति एवं महेश्वर के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। प्रकृति 'अव्यक्तावस्था' में ब्रह्म से अभिन्न होती है। यह प्रकृति उसी ब्रह्म की प्रेरेणा से सृष्टि-प्रक्रिया का विस्तार करती है। स्वयंभू महेश्वर शिव की तीन अवस्थायें हैं-ब्रह्मा के रूप में वे चतुर्मुख हैं, काल के रूप में वे संहारक हैं तथा पुरुष(विष्णु) रूप में सहस्त्र शीर्षोंवाले हैं। वे ब्रह्मा होकर सृष्टि करते, काल के रूप में संहार करते तथा पुरुष के रूप में वे उदासीन होते हैं।

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चाऽन्तकः स्मृतः।
सहस्त्रमूर्धा पुरुषस्तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः।।
ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्कालत्वेसङ्क्षिपत्यपि।
पुरुषत्वेह्युदासीनः ..... (लिंग पु. 1/70/90-91)

भगवान् शिव विभिन्न नाम, रूप, आकृति तथा क्रियाओंवाली वस्तुओं की सृष्टि तथा संहार लीलावश करते रहते हैं।

नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया।
महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च।। (लिंग पु. 1/70/94)

चूँकि महादेव नाना रूप धारण करते हैं तथा नाना गुणों से युक्त हैं इसलिये उन्हें अनेक नामों से पुकारा जाता है। उन्हें त्रिगुण, चतुर्व्यूह, ऋषि, शिव, ओंकार, आदिदेव, अज, महादेव, सर्वव्यापक, ईश्वर, यज्ञ, केवल, स्वयंभू, कर्म, अग्नि, आदित्य आदि कहा जाता है(लिंग पु. 1/70/95-104)।

किसी प्रसंग में भगवान् विष्णु महादेवजी को महेश्वर, परमात्मा, नारायण, ब्रह्मा, ब्रह्म, अव्यक्त, अनन्त तथा शाश्वत आदि कहकर प्रणाम करते हैं।

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने।
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।।
शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नमः। (लिंग पु. 1/71/96-97)

त्रिपुरासुर के विनाश के लिये देवगण शिव की स्तुति करते हुए उन्हें सर्वात्मा, दुःख हरनेवाला, सर्वोच्चलक्ष्य, आदि, अन्त, अनन्त, अक्षय, जगद्गुरु, स्त्रष्टा, कर्त्ता, हर्त्ता, प्रकृति, पुरुष, वरदाता, अभिव्यक्तियों से परे, मोक्ष के लिये योगियों द्वारा पूजित, परम ब्रह्म, सत्, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महानतम से भी महान् तथा सभी वस्तुओं का स्त्रोत आदि कहते हैं(लिंग पु. 1/71/100-114)।

त्रिपुरदाह के पश्चात् ब्रह्माजी विष्णु आदि देवताओं के साथ भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें परमेश्वर, जगत्पति, आनंददाता, शाश्वत, पंचमुख, मुक्तिदाता, धवल वर्ण, वरदाता, ज्येष्ठ, त्रिदेव, वषट्कार, चतुर्थमात्रात्मक, ओंकार, सगुण, निर्गुण, पिनाकी, सर्वज्ञ, शरण्य, योगप्रदाता, ध्येय,

योगियों के ध्यान का निर्विकल्प विषय, अनन्त शिर, बाहु और पैरवाला, अनन्त रूपवाला, संहारक एवं शिवरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म, वेदों द्वारा ज्ञेय, वेदों द्वारा स्तुत्य, आदि-अन्तहीन, अवाच्य, लिंगी, अलिंगी फिर भी लिंगरूप, निर्गुण एवं निराकार, देवों द्वारा अदृश्य, दिव्य रूपवाला तथापि लिंग में प्रकट होनेवाला कहा है(लिंग पु. 1/72/122-166)।

स्तुति के बाद ब्रह्मा ने शिव की भक्ति का तथा विष्णुजी ने शिवका सतत वाहन बनने[1], उनकी भक्ति, उन्हें वहन(ढोने) करने की शक्ति, सर्वज्ञता एवं सर्वव्यापकता का वरदान पाया।

जनार्दनोऽपिभगवान्नमस्कृत्यमहेश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्राह साम्बन्त्रियम्बकम्।।
वाहनत्वन्तवेशान! नित्यमीहे प्रसीद मे।
त्वयि भक्तिश्चदेवेश! देवदेव नमोऽस्तुते।।
सामर्थ्यञ्च सदामह्यंभवन्तंवोढुमीश्वरम्।
सर्वज्ञ त्वञ्च वरद! सर्वग त्वञ्च शंकरः!।।
त्योः श्रुत्वामहादेवो विज्ञप्तिम्परमेश्वरः।
सारथ्ये वाहनत्वे च कल्पयामास वै भवः।। (लिंग पु. 1/72/173-176)

हिरण्यकशिपु के वध के बाद भी जब नृसिंह का क्रोध शान्त न हुआ तो उन्हें शान्त करने के लिये देवगण शिव से प्रार्थना-स्तुति करते हैं। उन्होंने अपनी स्तुति में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, संहारक, पुरुष, सत्-असत् के भेद से रिक्त, काल, तारक, परमात्मा, ईश्वर, परमेष्ठी, ब्रह्म तथा विश्व के अधिपति आदि कहा है(लिंग पु. 1/95/35-58)।

शरभावतार ले भगवान् शिव ने जब नृसिंह को निस्तेज कर दिया तब नृसिंह ने भगवान् शिव की 108 नामों से स्तुति की, और भगवान् शिव को प्रसन्न कर वे अपने धाम चले गये अथवा शिव में ही विलीन हो गये(लिंग पु. 1/96/76-94)।[2]

शिव के उपरोक्त विशेषणों में से कुछ चुने गये विशेषणों पर ही नृसिंह द्वारा की गयी स्तुति आधारित है। स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

---

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण में(श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/57 तथा 101) श्रीकृष्ण राधा को बतला रहे हैं कि मैं स्वयं वृषरूप धारण कर भगवान् शिव को वहन करता हूँ।

ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम्।
मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः।।
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः।
त्रिपुरस्य वधे पूर्वं मत्कलांशसमुद्भवः।।

(ब्रह्म. वै. पु./श्रीकृष्णज. ख. 36/57 तथा 101)

2. लिंग पुराण(1/96/112) में कहा गया है कि विष्णु(नृसिंह) शिव में लीन हो गये।

परात्पराय विश्वाय नमस्ते विश्वमूर्त्तये।
नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे।।
योगीश्वराय नित्याय सत्याय परमेष्ठिने।
सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सर्वेश्वराय ते।।

अर्थात्–परात्पर को नमस्कार है। विश्व, विश्वमूर्ति, विष्णु कलत्र एवं विष्णु–क्षेत्र(जिसका अर्थ है–विष्णु जिसकी पत्नी हो। चूँकि विष्णु को प्रकृति माना गया है[1], इसलिये शिव को उसका पति कहा गया है) तथा भानु को नमस्कार है। योगीश्वर को, नित्य, सत्य, परमेष्ठिन(सर्वश्रेष्ठ देव), सर्वात्मा तथा सर्वेश्वर को नमस्कार है(लिंग पु. 1/96/81, 92)।

जालंधर को मारने के लिये शिवजी ने सुदर्शन चक्र को जल में अपने पैर के अँगूठे से लीलापूर्वक पैदा किया था(लि. पु. 1/97/16 तथा 1/98/15)। असुरों के ज्यादा तेज सम्पन्न हो जाने पर उनको सामान्य चक्र आदि से मारना सम्भव न था। फलस्वरूप सुर्दशन चक्र की प्राप्ति हेतु भगवान् विष्णु ने 1000 नामों से स्तुति करते हुए एक–एक नाम पर एक–एक कमल का फूल शिव को अर्पित किया। एक फूल के कम हो जानेपर उन्होंने कमल सदृश्य अपने नेत्र को अर्पित कर सहस्त्रनाम को पूरा किया। तदनन्तर शिवजी ने प्रसन्न हो उन्हें सुदर्शन चक्र, भक्ति तथा देव–दानवों आदि द्वारा पूज्य होने का वरदान दिया(लिंग पु. 1/98/182–186)।

प्राह च एवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्।।
मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः।।
भविष्यसिनसन्देहोमत्प्रसादात्सुरोत्तम।। (लिंग पु. 1/98/182–183)

विष्णु द्वारा जिस सहस्त्रनाम(लिंग पु. 1/98/27–158) से शिवजी की स्तुति की गयी है वह शिव के अनेक विशेषणों पर आधारित है, जिनमें से अनेकों को हमने उपरोक्त स्तुतियों में देखा है। यहाँ पर हम कुछ श्लोकों को देखें–

भक्तिगम्यः परंब्रह्ममृगवाणार्पणोऽनघः।
अद्रिराजालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।

---

1. लिंग पु. 1/96/40 आदि में स्पष्टरूप से विष्णु को प्रकृति तथा रुद्र को पुरुष बताया गया है। इसी प्रकार वायु पुराण में भगवान् शिव विष्णुजी से कहते हैं कि आप प्रकृति हैं तो मैं पुरुष हूँ; आप मेरे आधे शरीर हैं तो मैं आपका आधा शरीर हूँ; आपका श्रीवत्सलांछन वाम पार्श्व मैं हूँ और मेरे श्यामल दक्षिणार्द्ध आप हैं इसी से मुझे लोग नीललोहित कहते हैं।

आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम्। भवानर्द्धशरीरं मे त्वहन्तव यथैव च।।
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम्। त्वञ्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः।।
(वायुमहापुराणम् 1/25/23–24)

विष्णुर्ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थ नाशनः।
अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरष्टुतः।।
वेधा धाता विधाता च अत्ता हर्त्ता चतुर्मुखः।
कैलासशिखरावासीः सर्वावासी सतां गतिः।।
एकज्योतिर्निरातङ्कोनरोनारायणप्रियः।।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः।

अर्थात्-भगवान् शिव भक्तिगम्य, परम ब्रह्म, मृगवाणार्पण{(यज्ञरूप)मृग पर बाण छोड़नेवाले}, अनघ(पापरहित), अद्रिराजालय(पर्वतराज पर डेरा करने या रहनेवाले), कान्त(कान्ति या तेजयुक्त), परमात्मा, जगद्गुरु, विष्णु, ग्रहपति(ग्रहों के स्वामी), कृष्ण, समर्थ, अनर्थनाशन(अनर्थ को दूर करनेवाला), अर्धमशत्रु, अक्षय, पुरुहूत(जिसका बार-बार आवाहन होता है), पुरष्टुतः(जिसकी बार-बार स्तुति की जाती हो), वेधस्(स्रष्टा), धातृ(धारण करनेवाला), विधातृ, अत्तृ(निगल जानेवाला), हर्त्ता, चतुर्मुख, कैलासशिखरावासी(कैलास शिखर पर निवास करनेवाले), सर्वावासी(सर्वत्र वसनेवाले), सतांगति(सज्जनों का लक्ष्य), एक ज्योति(एकमात्र प्रकाश), निरांतक(आंतकरहित), नर-नारायणप्रिय, निर्लेप, निष्प्रपंचात्मा, निर्व्यग्र(व्यग्रता से रहित) तथा व्यग्रनाशन(व्यग्रता को दूर करनेवाला) हैं(लिंग पु. 1/98/61-62, 97, 136, 155-156)।

शिव एवं शक्ति की अभिन्नता तथा उनके एक दूसरे का पूरक होने का तथ्य समझाते हुए कहा गया है कि परमात्मा को शिव एवं शिवा दोनों कहते हैं। ये दोनों पुरुष एवं स्त्रीरूप उस परमात्मा के हैं जिन्हें महादेव कहा जाता है। शिव को ईश्वर, पुरुष, यज्ञ, ब्रह्मा आदि और उमा को माया, प्रकृति, दक्षिणा, सावित्री आदि कहते हैं(लिंग पु. 2/11/3-5, 7)। पुरुषवाचक सभी वस्तुएँ शिव की तथा स्त्रीवाचक वस्तुएँ शिवा की अभिव्यक्तियाँ हैं(लिंग पु. 2/11/19)।

पुंलिङ्गशब्दवाच्यायेतेचरुद्राः प्रकीर्त्तिताः।
स्त्रीलिङ्गशब्दवाच्यायासर्वागौर्य्याविभूतयः।। (लिंग पु. 2/11/19)

उमा को विश्व की देवी तथा शिव को सबका देव कहा गया है। जिस किसी में भी शक्ति है वह महादेव का ही अंग है(लिंग पु. 2/11/21)। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं उसी प्रकार शिव से जीव प्रकट होते हैं। शिव का दो प्रकार का अस्तित्व है-शक्तिरूप तथा शक्तिमानरूप। जीव का शरीर देवीरूप जबकि जीव स्वयं शिव का रूप है। सभी शरीरधारी शिव के अंश हैं(लिंग पु. 2/11/23-24)। शब्द उमारूप तो स्रोता शिवरूप तथा उमा पदार्थरूप तो शिव उसकी आत्मारूप हैं(लिंग पु. 2/11/25-26)। शिवा सभी प्रकार के कल्पितरूप को व्यक्त करती हैं तो शिव सभी प्रकार की कल्पना करनेवाले को व्यक्त करते हैं। वे विश्व का आत्मा तथा महेश्वर हैं(लिंग पु. 2/11/29)।

शिव पंचब्रह्मरूप(तत्पुरुष, अघोर आदि) हैं तथा वे ही सभी लोकों के एकमात्र संहर्त्ता, रक्षक तथा निर्माता हैं। वे ही जगत् के उपादान एवं निमित्त कारण हैं। शिव का प्रथम रूप ईशान कहलाता

है। वह प्रकृति का भोक्ता कहलाता है। अर्थात् भोक्तापन को ईशान व्यक्त करता है। दूसरा रूप तत्पुरुष कहलाता है जो प्रकृति को व्यक्त करता है। शिव का तीसरा भौतिकरूप अघोर कहलाता है जो बुद्धितत्त्व को व्यक्त करता है। वामदेव चौथा भौतिकरूप है जो अहंकार के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। पाँचवा रूप सद्योजात है जो सभी प्राणियों में मनरूप से विराजमान रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत् पंचब्रह्मरूप ही है। अर्थात् भगवान् शिव के इन पाँचों रूपों से ही सम्पूर्ण सृष्टि की प्रक्रिया चलती है। शिव के आनंद की अभिव्यक्ति इन पाँच रूपों में होती है(लिंग पु. 2/14/3-10 तथा 31)।

शिव को सत्, असत् तथा उनके स्वामी, अस्ति और नास्ति, क्षर-अक्षररूप, तथा क्षर-अक्षर से परे, व्यक्त एवं अव्यक्त, समष्टि, व्यष्टि एवं उनके कारण, परम ब्रह्म, विद्या तथा अविद्या आदि कहा गया है(लिंग पु. 2/15/3-18)। शिव का सर्वोत्तम रूप 'भ्रान्ति', 'विद्या' एवं 'परम' है। नानाविध वस्तुओं की प्रतीति का नाम 'भ्रान्ति' है। आत्मा के रूप में सब कुछ देखना 'विद्या' तथा(वस्तुओं के बारे में) संदेह एवं विकल्परहित होना 'परम' कहलाता है। भगवान् के इन तीनों रूपों से अलग कुछ भी नहीं है। कुछ लोग शिव को 'व्यक्त', 'अव्यक्त' एवं 'ज्ञ' कहते हैं। 'व्यक्त' का अर्थ प्रकृति के 23 विकार, 'अव्यक्त' का अर्थ अव्यक्त प्रकृति है। जो गुणों को भोगता है वह पुरुष 'ज्ञ' कहलाता है। इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो शिव से भिन्न हो। अर्थात् समस्त चराचर जगत् शिव की ही अभिव्यक्ति है(लिंग पु. 2/15/20-26)।

जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार हेतु, भगवान् शिव की तीन अवस्थाओं को भव, विष्णु तथा विरंचि कहते हैं। शरीरधारी उनकी श्रद्धापूर्वक अथवा भक्तिपूर्वक आराधना कर मुक्त हो जाते हैं।

तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः।
भवविष्णुविरिञ्चाख्यमवस्थात्रयमीशितुः।।
आराध्य भक्त्या मुक्तिञ्च प्राप्नुवन्तिशरीरिणः। (लिंग पु. 2/16/19-20)

विद्वानों ने शिव के निम्नलिखित चार रूप बताये हैं-कर्तृ, क्रिया, कार्य और करण। चार अन्य रूप जो शिव से संबंध रखते हैं, इस प्रकार हैं-प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमिति(लिंग पु. 2/16/20-22)। माया, अविद्या, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रिया-ये पाँचों(निश्चित रूप से) शिव से उसी प्रकार प्रकट होती हैं जिस प्रकार सूर्य से किरणें(लिंग पु. 2/16/30)।

देवताओं द्वारा शिव के स्वरूप संबंधी प्रश्न पूछे जाने पर स्वयं भगवान् शिव कहते हैं कि मैं ही पुराणपुरुष, शाश्वत, अशाश्वत, ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के अधिपति, प्रकृति, पुरुष, सर्वव्यापी, सत्य, गुरु, ज्येष्ठ, ईश, यज्ञवेदी, चारों वेद, स्वयंभू, अमर्त्य, मर्त्य, अजन्मा, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, सर्वज्ञ, परमेश्वर तथा सर्वात्मा आदि हूँ(लिंग पु. 2/17/10-22)। भगवान् शिव के कुछ कथनों को देखें-

ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्माविष्णुर्महेश्वर।

बुद्धिश्चाहमहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणिच।। (लिंग पु. 2/17/19)

अर्थात्–मैं ज्योति एवं अंधकार हूँ। मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हूँ। मैं ही बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा तथा इन्द्रियाँ हूँ।

एक स्थल पर देवगणों ने शिव को ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, भूत, वर्तमान एवं भविष्य की वस्तुओं को बनानेवाला, विश्वरूप, सत्यस्वरूप, ब्रह्म, देवेश, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, विश्व एवं अविश्वरूप, कृत, अकृत, ओंकार, प्रणव, महान्, परम ब्रह्म, अद्वैत, परमेश्वर, मन–वाणी की पहुँच से परे, विश्व स्रष्टा, सबसे बड़े ईश, सूक्ष्म, अपरिवर्तनीय, सबके हृदय में छुपा रहनेवाला, ऋत, सत्यस्वरूप ब्रह्म, पुरुष, तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवों का स्रष्टा आदि कहा है(लिंग पु. 2/18/1–42)।

उपरोक्त उद्धरणों तथा सन्दर्भों में भगवान् शिव की जिन–जिन विशेषताओं तथा उनपर आधारित नामों का उल्लेख है उस आधार पर भगवान् शिव सृष्टि के परम तत्त्व, जिसे दार्शनिक परमब्रह्म कहते हैं, सिद्ध होते हैं। उन्हीं से समस्त चराचर जगत् तथा उनकी व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इन्द्रादि प्रमुख देवगण पैदा होते और सृष्टिकार्य की समाप्ति पर अथवा महाप्रलय की स्थिति में वे उन्हीं में लय को प्राप्त हो जाते हैं। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं। निर्गुणरूप में वे ॐकारस्वरूप, देवताओं तथा ऋषियों–सबके द्वारा अगम्य, मन, वाणी और बुद्धि से परे, अव्यक्त, शुद्ध, अद्वैत, स्वयंभू एवं नित्य तत्त्व हैं। सगुणरूप धारण कर वे समस्त चराचर जगत् के स्रष्टा, पालक, तथा संहारक बनते हैं। इस चराचर जगत् की प्रत्येक वस्तु में उन्हीं की अभिव्यक्ति है। अर्थात् माया या प्रकृति का आश्रय ले वे अणु से लेकर ब्रह्माण्डतक की वस्तुओं का रूप धारण करते हैं। वे ही सबकुछ बन जाते हैं, उनके सिवा इस जगत् में कुछ भी अस्तित्व नहीं रखता।

माया महेश्वर की शक्ति है और वह उन्हीं की इच्छा से सृष्टिकार्य का संपादन करती है। माया एवं महेश्वर आपस में अवियोज्य हैं, उन्हें केवल कल्पना में अलग किया जा सकता है। जब महेश्वर स्वयं अपना सगुणरूप(अलग से) प्रकट करते हैं तो वे अनेक प्रकार के विशेषणों या गुणों से युक्त हो जाते हैं जैसे–पंचमुखी, दस भुजावाले, नीलकण्ठ, गंगाधारी, मृगचर्म, डमरू, त्रिशूल, जटा, पिनाक आदि को धारण करनेवाले, त्रिपुरारि, कामारि, आशुतोष, भक्तवत्सल, श्वेत वर्ण, कैलासवासी, अर्द्धनारीश्वर, नागों के आभूषण धारण करनेवाले, कालकूट का पान करनेवाले, भोग–मोक्ष, स्वर्ग–नरक आदि का स्वामी, वरदाता, सभी विद्याओं तथा देवों के ईश्वर आदि–आदि।

शिवोपासना

चूँकि भगवान् शिव सर्वश्रेष्ठ, सर्वदेवमय, सर्वोच्च, आशुतोष एवं परम दयालु हैं, इसलिये इनकी उपासना या भक्ति करनी चाहिये। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं, इसीलिये इनकी उपासना इन दोनों ही रूपों में होती है। उपासना के रूपों पर विचार करने से पहले हम शिवभक्ति की महिमा पर विचार करेंगे।

(1) शिवभक्ति का माहात्म्य

शिवोपासना से अर्थ, धर्म तथा काम की प्राप्ति होती है(लिंग पु. 2/21/79)। जो व्यक्ति शिव की उपासना एकबार भी कर लेता है वह पुरुष मानो सदैव यज्ञ, दान एवं वायुभक्षण कर जीवनयापन करनेवाला तप करता है। अर्थात् उसे सतत किये जानेवाले तप, दान एवं यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। जो लोग महादेव की एकबार, दो अथवा तीनबार नित्य पूजा करते हैं वे स्वयं रुद्र-स्वरूप हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

सदा यजति यज्ञेन सदा दानंप्रयच्छति।
सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेत्शिवम्।।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा।
येऽर्चयन्ति महादेवं ते रुद्रा नाऽत्र संशयः।। (लिंग पु. 2/21/80-81)

सूतजी एक स्थल पर ऋषियों से कह रहे हैं कि जो लोग भगवान् शिव के भक्त हैं वे सौभाग्यशाली हैं क्योंकि वे सुखों को भोगने के पश्चात् मुक्त हो जायँगे। लोगों का मन घर, पत्नी तथा बच्चों में आसक्त रहता है ठीक उसीप्रकार जिसप्रकार से मुनियों का मन आदिपुरुष में। परन्तु अगर अकस्मात् एकबार भी मन प्रभु की ओर मुड़ जाय तो उसके लिये शिवधाम दूर नहीं है।

ये भक्तादेवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः।
भाग्यवन्तोविमुच्यन्ते भुक्त्वा भोगानिहैवते।।
पुत्रेषु दारेषु गृहेषु न्ऋणां भक्तं यथा चित्तमथादिदेवे।
सकृत्प्रसङ्गाद्यतितापसानां तेषां न दूरः परमेशलोकः।।(लिंग पु. 1/78/25-26)

सूतजी कहते हैं कि हे ब्राह्मणों अगर सत्पुरुषों के संपर्क में आकर एकबार भी प्रसंगवश कोई शिव की पूजा कर लेता है तो वह रुद्रलोक को प्राप्त करता है। निर्दयी मनुष्य जिस प्रकार दुःखी होते हैं, उसी प्रकार शिवभक्ति विहीन भी(दुःखी होते हैं)।

प्रसङ्गाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः!।
रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम्।।
भवन्ति दुःखिताः सर्वे निर्दयामुनिसत्तमाः।
भक्तिहीनानराः सर्वे भवे परमकारणे।। (लिंग पु. 1/78/23-24)

निष्कल परमात्मा शिव स्वेच्छा से(भक्तों के लिये) शरीर धारण करते हैं। वे सभी जीवों पर कृपा कर सुख प्रदान करते हैं। इसीलिये उन्हें शंकर कहा जाता है। संसारभय से भयभीत जो लोग योग का आश्रय लेते हैं वे भी शिव की दया से विरक्ति एवं वैराज्ञ को प्राप्त करते हैं(लिंग पु. 1/6/21-22)। धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य उनकी कृपा का परिणाम है। जो शंकर का आश्रय

ग्रहण करते हैं, वे आसानी से मुक्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति यदि पापों में लिप्त रहा हो तो भी नरक नहीं जाता। शंकर का आश्रय ग्रहण करने से आवागमन से मुक्ति तथा शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है।

धर्मो ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वरर्यं शंङ्करादिह।
स एव शङ्करः साक्षात् पिनाकीनीललोहितः।।
ये शङ्कराश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः।
न गच्छन्त्येवनरकंपापिष्ठाअपिदारुणम्।।
अश्रिताः शङ्करं तस्मात् प्राप्नुवन्ति च शाश्वतम्। (लिंग पु. 1/6/25-27)

वहीं पर आगे कहा गया है कि जो शंकर की शरण ग्रहण नहीं करते वे करोड़ों नरकों में पकाये जाते हैं।

कोटयो नरकाणान्तु पच्यन्ते तासुपापिनः।
अनाश्रिताः शिवंरुद्रंशङ्करंनीललोहितम्।। (लिंग पु. 1/6/28)

भगवान् शिव की दया का वर्णन हजारों वर्षों में पूरा नहीं हो सकता। उनकी दया या कृपा से धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य तथा मोक्ष सब-कुछ प्राप्त हो सकता है। इसके बारे में कोई संशय नहीं होना चाहिये।

तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च।
वैराग्यमपवर्गश्च नाऽत्र कार्य्या विचारणा।। (लिंग पु. 1/9/66)

ब्रह्माजी ब्राह्मणों से कहते हैं कि जिसके अन्दर(शिव) भक्ति है वह तत्काल मुक्त हो जाता है। जो रुद्र-भक्ति से युक्त है उसे त्याग, शुभ व्रत, यज्ञ, दान, शास्त्र, तथा वेद आदि से क्या प्रयोजन?(अर्थात् रुद्रभक्तों के लिये ये चीजें ज्यादा महत्त्व की नहीं हैं क्योंकि रुद्रभक्ति पैदा करने के लिये ही इनका उपयोग होता है। जब भक्ति प्राप्त हो जाती है तो ये चीजें निरर्थक हो जाती हैं। जबतक भक्ति प्राप्त नहीं हो जाती तभीतक इनका महत्त्व है।)

सद्योऽपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढ़व्रताः।।
त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमैर्लब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः।।

(लिंग पु. 1/29/81-82)

ब्रह्माजी देवदारू वन में ऋषियों से कह रहे हैं कि तुम्हें भगवान् शिव की भक्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिये क्योंकि वे ही सभी प्रकार के भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

तस्मान् मृत्युञ्जयञ्चैव भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजाः!।
मुक्तिदं भुक्तिदञ्चैव सर्वेषामपि शङ्करम्।। (लिंग पु. 1/30/28)

भगवान् विष्णु सभी देवों से कहते हैं कि सभी प्राणियों को मार एवं जलाकर और अन्यायपूर्वक

भोगों को भोगने के बाद भी अगर वह महादेवजी की पूजा करने लगता है तो वह निश्चित रूप से पापरहित है(क्योंकि शिवपूजन से उसके सभी पाप समाप्त हो जाते हैं)। उनके(शिव के) एक अंश की पूजामात्र से देवों ने अमरत्व, ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व तथा मैंने विष्णु के पद को पाया है। बिना उनकी पूजा के भला कौन इस संसार में पूर्णता को प्राप्त किया है?(अर्थात् किसी ने भी नहीं।)

हत्वा दग्धवा च भूतानि भुक्त्वा चाऽन्यायतोऽपि वा।
यजेद्यदि महादेवमपापो नाऽत्रसंशयः।।
तस्यांऽशमेकं सम्पूज्य देवा देवत्वमागताः।
ब्रह्माब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमेव च।।
तम पूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति। (लिंग पु. 1/71/47, 53-54)

आगे पुनः कहा गया है कि महान् पाप करने के बाद भी रुद्र की उपासना करने से लोग सभी पापों से ठीक उसी प्रकार छूट जाते हैं जैसे कमल के पत्ते से जल। उनकी उपासना से सांसारिक भोगों की भी अवश्यमेव प्राप्ति होती है।

कृत्वाऽपि सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयन्ति ये।।
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवाऽम्भसा।
पूजयाभोगसम्पत्तिरवश्यञ्जायते द्विजाः।। (लिंग पु. 1/71/69-70)

एक क्षण के लिये भी शिव का विस्मरण एक हानि है, महान् छिद्र है, एक मोह एवं मूकता है। जो शिवभक्ति परायण हैं, जो उन्हें हृदय से प्रणाम करते हैं तथा उन्हें स्मरण रखते हैं, उन्हें कोई दुःख नहीं होता।

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता।।
यत्क्षणं वा मुहूर्तम्वा शिवमेकं न चिन्तयेत्।
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।।
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्यभाजनम्। (लिंग पु. 1/73/22-24)

सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि भगवान् शिव की एकबार भी श्रद्धा से पूजा कर ली जाय तो रुद्रलोक की प्राप्ति तथा रुद्रों के सान्निध्य में आनंद लेने का मौका मिलता है।

श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम्।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्द्धं प्रमोदते।। (लिंग पु. 1/79/9)

एक स्थल पर कहा गया है कि भगवान् शिव की कृपा से एक क्षण में ही मुक्ति हो जाती है, यह भगवान् की प्रतिज्ञा है। परमेष्ठी की कृपा से निःसन्देहरूप से, गर्भस्थ हो चाहे पैदा हुआ हो, लड़का हो या जवान हो या बूढ़ा, सभी लोग मुक्त हो जाते हैं। उनकी कृपा से प्रत्येक जीव - अण्डज, पिण्डज, स्वेदज एवं स्थावर - मुक्त हो जाते हैं।

प्रसादेन क्षणान्मुक्तिः प्रतिज्ञैषा न संशयः।
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा।।
वृद्धोवामुच्यतेजन्तुः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
अण्डजश्चोद्भिजोवापिस्वेदजोवापिमुच्यते।। (लिंग पु. 1/87/16-17)

अगर कोई व्यक्ति मृत्यु के क्षण एक बार भी भगवान् शिव का स्मरण कर लेता है तो वह शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। अतः जो बार-बार उनका स्मरण करता है वह क्यों नहीं शिवसायुज्य को प्राप्त करेगा?

यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणान्तेसकृदेव वा।।
स याति शिवसायुज्यंकिं पुनर्बहुशःस्मरन्। (लिंग पु. 1/93/17-18)

उपमन्यु को उसकी माता उपदेश दे रही है कि जो लोग शिवभक्ति से रहित हैं उन्हें स्वर्ग, राज्य, मोक्ष तथा दूध-घी जैसी सांसारिक भोग की वस्तुएँ भी नहीं प्राप्त होतीं। इस संसार में सभी कुछ(मोक्ष एवं भोग की सामग्री) भगवान् शिव की कृपा से ही उपलब्ध होता है अन्य देवोंकी कृपा से नहीं। जो लोग अन्य देवों की उपासना करते हैं वे दुःखी, भ्रमित एवं आर्त्त होते हैं।[1]

भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेव प्रसादजम्।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमन्ति च।। (लिंग पु. 1/107/14)

उमापति की महिमा बताते हुए कहा गया है कि शिव की कृपा अथवा आज्ञा से ही भगवान् विष्णु जीवित एवं मृत व्यक्तियों को सैकड़ों यातनाओं से निजात दिलाकर संसार का पालन करते हैं। उनकी प्रेरणा से ही असुरों का विनाशकर देवों की रक्षा करते हैं .....।

जीवतांव्याधिभिःपीडांमृतानांयातनाशतैः।
विश्वम्भरः सदाकालंलोकैसर्वैरलङ्घ्यया।।
देवान्पात्यसुरान् हन्तित्रैलोक्यमखिलं स्थितः।
..... (लिंग पु. 2/10/29-30)

एक स्थल पर भक्तों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि विष्णुभक्त अन्य प्रकार के हजारों भक्तों से बढ़कर(श्रेष्ठ) है तथा शिव का भक्त हजारों विष्णुभक्तों से बढ़कर है। रुद्रभक्तों से बढ़कर दुनियाँ में कोई नहीं है।

---

1. अन्य देवता भी परात्पर भगवान् शिव के ही रूप हैं- इस तथ्य को न जानकर जो(अज्ञानतापूर्वक) अन्य देवों की उपासना करता है वह भ्रमित एवं दुःखी रहता है। वह भ्रमित इसलिये रहता है कि उसे यथार्थ तत्त्व का ज्ञान नहीं होता तथा दुःखी इसलिये रहता है कि ऐसे एकांगी देवता से उसके सभी मनोरथ(जैसे मोक्षादि) पूरे नहीं होते। जो भगवान् शिव की सर्वदेवमयता को जानकर अन्य देवों की उपासना करता है, वह प्रकारान्तर से भगवान् शिव की पूजा होने से, वह भ्रमित एवं दुःखी नहीं होता।

अन्य भक्तसहस्रेभ्योविष्णुभक्तो विशिष्यते।
विष्णुभक्तसहस्रेभ्योरुद्रभक्तो विशिष्यते।
रुद्रभक्तात्परतरो नास्तिलोके न संशयः।।[1] (लिंग पु. 2/4/20)

भगवान् शिव की उपासना से ब्रह्मा को दिव्ययोग, ज्ञान, प्रतिष्ठा, विरक्ति आदि की प्राप्ति(लिंग पु. 1/13/14-15), विष्णु को शिवभक्ति तथा पालन करने की शक्ति की प्राप्ति(लिंग पु. 1/19/11 आदि), दधीचि की(अवध्यता आदि का वरदान मिलने से) विष्णु पर विजय की प्राप्ति(लिंग पु. 1/30/35), श्वेत की मृत्यु पर विजय की प्राप्ति(लिंग पु. 1/30/29), विष्णु को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति(लिंग पु. 1/65/16-17 तथा 1/अध्याय 98), पराशर को अपने मृत पिता एवं भाईयों के दर्शन की प्राप्ति(लिंग पु. 1/64/75-92), यम को श्राप से प्राप्त अपने चर्मरोग से मुक्ति की प्राप्ति(लिंग पु. 1/65/9-11), ब्रह्म-पुत्र तण्डि को गणेश्वर पद की प्राप्ति(लिंग पु. 1/65/46-51), कृष्ण को पुत्र की प्राप्ति(लिंग पु. 1/69/67, 72-77 तथा 1/108/4, 6, 9), विष्णु को अन्य बातों के अलावा भगवान् शिव का वाहन बनने के वरदान की प्राप्ति(लिंग पु. 1/72/173-175) तथा शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या की प्राप्ति(लिंग पु. 1/35/16) हुई। शिवोपासना से लाभान्वित प्रमुख पुरुषों में से कुछ की गणना उपरोक्त संदर्भों में है। यथार्थ में लाभान्वित शिवभक्तों की संख्या असंख्य है।

(2) लिंगार्चन का महत्त्व

भगवान् शिव की सगुणोपासना दो रूपों में होती है-लिंगरूप में तथा मूर्तिरूप में। पहले हम लिंगपूजा की चर्चा करेंगे। आमतौर पर शिव की पूजा का अर्थ शिवलिंगपूजा लिया जाता है क्योंकि लिंगपूजा का ही अधिक व्यापक प्रचार एवं प्रसार है।

एकबार ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। उसी समय उन दोनों के समक्ष एक अग्नि स्तंभ प्रकट हुआ जिसके आदि-अन्त का पता वे दोनों न लगा सके। तब दोनों ने उस अग्निमय लिंग की(अर्थात् भगवान् शिव की) स्तुति की और भगवान् शिव से वरदान पाया। तभी से विश्व में लिंगपूजा का प्रचलन हुआ। लिंग की वेदी शिवा हैं तथा लिंग स्वयं भगवान् शिव का रूप है। इसे लिंग इसलिये कहा जाता है कि(अन्त में) सभी कुछ इसमें लीन(लय) हो जाता है।

तदाप्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।।

---

1. यहाँ पर रुद्र भक्त का अर्थ परात्पर शिव का भक्त है न कि संहारकारी रुद्र देवता का भक्त, जबकि विष्णु भक्त का अर्थ पालन करनेवाले देवता विष्णु का भक्त है(न कि परात्पर विष्णु का)। अगर हम इस तरह इस श्लोक का अर्थ करें तो यहाँ पर साम्प्रदायिकता का आक्षेप नहीं हो सकता।

लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः। (लिंग पु. 1/19/15-16)

किसी प्रसंग में एकबार ब्रह्माजी भगवान् शिव से प्रश्न करते हैं कि सभी देवता एवं गण लोग विष्णु के ही रूप हैं(अर्थात् भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं), वे देवों के देव हैं फिर भी वे आपके लिंगार्चन में क्यों रत रहते हैं? तथा वे सदैव आपकी भक्ति में क्यों लीन रहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि विधिपूर्वक लिंग की पूजा करने से ही तुम(ब्रह्मा), विष्णु तथा इन्द्रादि प्रमुख देवता तथा ऋषियों ने अपना-अपना पद प्राप्त किया है, इसलिये वे अब भी लिंगार्चन करते रहते हैं। बिना लिंगार्चन के निष्ठा नहीं प्राप्त होती, इसलिये नित्य श्रद्धापूर्वक विष्णु हमारी पूजा करते हैं।

भवान्नारायणश्चैव शक्रः साक्षात्सुरोत्तमः।।
मुनयश्च सदा लिङ्गं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्।
स्वं स्वं पदं विभो! प्राप्तास्तस्मात् सम्पूजयन्ति ते।।
लिङ्गार्चनं विना निष्ठाना स्तितस्माज्जनार्दनः।
आत्मनोयजतेनित्यंश्रद्धयाभगवान्प्रभुः।। (लिंग पु. 1/24/146-148)

लिंगार्चन के महत्त्व को जान कर ही ब्रह्माजी देवदारू वन के ऋषियों को विधिपूर्वक लिंगनिर्माण कर उसकी यथाविधि पूजा-अर्चना का निर्देश देते हैं। निर्देश देते समय वे कहते हैं कि ऐसा करने से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी(लिंग पु. 1/31/19)।

त्रिपुरासुर के विनाश के बाद ब्रह्माजी देवताओं से कहते हैं कि जबतक देवगण शिव की पूजा लिंगरूप में करते हैं तबतक उनमें स्थिरता बनी रहती है। प्रमुख देवों द्वारा शिव की भक्ति श्रद्धापूर्वक की जानी चाहिये। समस्त विश्व लिंग पर ही आधारित है। सभी वस्तुएँ भी लिंगरूप हैं। इसलिये जो आत्मा की पूर्णता को चाहते हैं उन्हें लिंगार्चन करना चाहिये। लिंगार्चन से ही देवता, दैत्य, दानव, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, पिशिताशन, पितृ, ऋषि, पिशाच, किन्नर, तथा अन्य लोगों ने सिद्धि पायी है।

तस्मात् सदापूजनीयोलिङ्गमूर्तिःसदाशिवः।
यावत्पूजासुरेशानांतावदेव स्थितिर्यतः।।
पूजनीयः शिवो नित्यं श्रद्धया देवपुङ्गवैः।
सर्वलिङ्गमयो लोकःसर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।।
तस्मात्सम्पूजयेल्लिङ्गंयइच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
सर्वे लिङ्गार्चनादेवदेवादैत्याश्चदानवाः।।
यक्षाविद्याधराः सिद्धाराक्षसाः पिशिताशनाः।
पितरोमुनयश्चापिपिशाचाः किन्नरादयः।।
अर्चयित्वालिङ्गमूर्तिं संसिद्धानात्र संशयः।
तस्माल्लिङ्गंयजेन्नित्यं येनकेनापिवासुराः।। (लिंग पु. 1/73/5-9)

उमादेवी वेदी या पीठ के रूप में तथा भगवान् शिव लिंगरूप में होते हैं। उनकी प्रयत्नपूर्वक

स्थापना करके देवता एवं असुर लोग पूजा करते हैं। अगर लोग लिंग को छोड़कर किसी अन्य देवता की उपासना करने लगें तो वे अपने राजासहित रौरव नरक में जायँगे।[1] ब्रह्मा आदि देवगण, समृद्धिशाली राजागण, प्रजा तथा ऋषिगण–सभी लिंग की पूजा करते हैं। हजारों पापों के करने तथा सैकड़ों ब्राह्मणों की हत्या करने के बाद भी अगर कोई पूरी भक्ति के साथ शिव की शरण लेता है तो वह निःसन्देहरूप से मुक्त हो जाता है। सभी लोक लिंग से भरे पड़े हैं, वे सभी लिंग पर आश्रित हैं, इसलिये शाश्वत पद की प्राप्ति के लिये लिंगार्चन करना चाहिये।

पीठाकृतिरुमा देवी लिङ्गरूपश्च शङ्करः।
प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेनपूजयन्ति सुरासुराः।।
शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजन्ते चान्य देवताः।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्।।
बह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः।
मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति च।।
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा।
भावात्समाश्रितो रुद्रंमुच्यतेनात्रसंशयः।।
सर्वेलिङ्गमया लोकाः सर्वे लिङ्गे प्रतिष्ठिता।
तस्मादभ्यर्चयेल्लिङ्गं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम्।।

(लिंग पु. 2/11/31, 35, 37, 39–40)

एक स्थल पर कहा गया है कि अग्निहोत्र, वेदों का उच्चारण तथा प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ लिंगार्चन की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं।

अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्गार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः।। (लिंग पु. 2/21/79)

विधिपूर्वक लिंग की स्थापना करनेवाला स्वयं परमेश्वररूप हो जाता है। इस प्रकार स्थापना करने से देव, रुद्र, ऋषि तथा अप्सरा सभी स्थापित एवं पूजित होते हैं। यथार्थ में त्रैलोक्य के सभी चराचर जीवों की उसके द्वारा पूजा हो जाती है।

य एवं स्थापयेल्लिङ्गं स एव परमेश्वरः।

---

1. इस श्लोक को कई लोग साम्प्रदायिक मानते हैं जो बाद में जोड़ दिया गया है। जैसा हम आगे देखेंगे, शिवलिंग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता निहित होते हैं तथा शिवलिंग की पूजा से सभी की पूजा सम्पन्न हो जाती है। अतः यहाँ भाव यह हो सकता है कि लिंगस्थ सभी देवों को छोड़कर अन्य देवों की पूजा करनेवाले को नरक की प्राप्ति होती है। लिंगस्थ देवों के अलावा कौन से देवता शेष रह जाते हैं? ऐसे देवता जो हिन्दुओं के नहीं हैं, अथवा काल्पनिक देव हैं, अथवा अन्य निकृष्ट भूत–प्रेतादि जो कालान्तर में स्थानीय देवता के रूप में पूजे जाने लगे हों।

तेनदेवगणा रुद्रा ऋषयोऽप्सरसस्तथा।।
स्थापिताः पूजिताश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्। (लिंग पु. 2/47/49-50)

दूसरे शब्दों में लिंगार्चन के पश्चात् किसी भी देव की पूजा शेष नहीं रह जाती अत: लिंगार्चन अवश्य करना चाहिये। इससे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-सभी की प्राप्ति हो जाती है(लिंग पु. 2/47/5)। ब्रह्मा लिंग के मूल में, विष्णु मध्य में तथा रुद्र ऊपर स्थित होते हैं(लिंग पु. 2/47/11) और पीठ में देवी स्थित होती हैं।

विष्णु इन्द्रनील का, इन्द्र पद्मराग का, विश्रवा का पुत्र सोने का, विश्वेदेव चाँदी का, वसुगण चुम्बक का, वायु पीतल का, अश्विनबंधु पार्थिव का, वरुण स्फटिक का, आदित्यगण ताँबे का, सोम मोती का, अनन्त आदि नाग मूँगे का, दैत्य एवं राक्षस लोहे का, गुह्यक लोग तीन धातुओं का, गणलोग सभी धातुओं का, चामुण्डा तथा अन्य देवियाँ रेत का, नैर्ऋति लकड़ी का, यम मरकत मणि(पन्ना) का, नीलरुद्र तथा अन्य भस्म का, लक्ष्मी बिल्ववृक्ष का, गुह गाय के गोबर का, मुनिलोग कुशा का, वामदेव आदि पुष्प का, मनोमनी गंध का, सरस्वती रत्नों का तथा दुर्गा सोने का लिंग पूजती हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने अधिकार के अनुसार नाना प्रकार के लिंग पूजते हैं(लिंग पु. 1/74/2-11)। आगे कहा गया है कि लिंगार्चन से ही समस्त चराचर जगत् स्थित है(लिंग पु. 1/74/12)।

ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी लिंगपर प्रतिष्ठित हैं। इसलिये सभी कुछ त्यागकर लिंग की स्थापना करनी चाहिये। इसकी पूजा करने से सबकी पूजा हो जाती है।

ब्रह्मादिस्थावरान्तश्चसर्वंलिङ्गेप्रतिष्ठितम्।।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिङ्गमव्ययम्।
यत्नेनस्थापितंसर्वं पूजितं पूजयेद्यदि।। (लिंग पु. 2/46/20-21)

(3) लिंगार्चन विधि

इस पुराण में लिंगनिर्माण तथा उसके स्थापन की विधि का वर्णन विस्तार से है। स्थानाभाव से उनकी चर्चा यहाँ संभव नहीं है। इसमें नाना प्रकार के लिंगों की भी चर्चा है। वस्तु के भेद से छ: प्रकार के लिंग होते हैं। प्रथम शैलज(पाषाण से बना), जो चार प्रकार का होता है, दूसरा रत्नमय(रत्नों से बना) जो 7 प्रकार का होता है, तीसरा धातुनिर्मित जो आठ प्रकार का होता है, चौथा काष्ठ(लकड़ी) निर्मित जो 16 प्रकार का होता है, पाँचवा मिट्टी से निर्मित जो दो प्रकार का होता है तथा छठा क्षणिकलिंग जो 7 प्रकार का होता है। रत्नमयलिंग सौभाग्य, प्रस्तरनिर्मित सिद्धि, धातुनिर्मित धन, काष्ठनिर्मित भौतिक सुख तथा मृत्तिकानिर्मित सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। पत्थरनिर्मित लिंग को उत्तम तथा धातुनिर्मित लिंग को मध्यम कहा गया है। लिंग के मूल में ब्रह्मा,

मध्य में विष्णु तथा अग्रभाग में ॐकारस्वरूप शिव स्थित होते हैं। वेदी त्रिगुणात्मिका देवी होती हैं। जो वेदी सहित लिंग की पूजा करता है वह देवी की भी पूजा करता है। किसी भी प्रकार के लिंग को भक्ति के साथ स्थापित करने से अच्छा फल प्राप्त होता है। (लिंग पु. 1/74/13-22)

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः।
लिङ्गवेदी महादेवी त्रिगुणात्रिमयाम्बिका।।
तया च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ।
शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्।।
मृण्मयं क्षणिकं वाऽपि भक्त्या स्थाप्यं फलं शुभम्। (लिंग पु.1/74/19-22)

कुन्द के फूल या गाय के दूध की भाँति श्वेतलिंग की स्कन्द एवं उमा के साथ विधिपूर्वक स्थापना व्यक्ति को रुद्रस्वरूप बना देती है। अतः इस प्रकार के लिंग की स्थापना का बहुत ही महत्त्व है (लिंग पु. 1/74/27-28)।

लिंगार्चन से पहले अभिषेक करना चाहिये। यह अभिषेक तीन प्रकार का होता है। सबसे पहले शुद्ध छाने हुए जल से, फिर भस्म से तथा मन्त्र से। स्नानकर स्वयं शुद्ध हो अभिषेक करना चाहिये। अगर किसी व्यक्ति का भाव शुद्ध नहीं है तो वह जलस्नान तथा भस्मलेपन से भी शुद्ध नहीं हो सकता। शुद्ध भाववाले को ही अभिषेक करना चाहिये। मंत्राभिषेक के बाद लिंगपूजा करनी चाहिये।

इसके उपरान्त पूजास्थल पर बैठकर तीन प्राणायाम कर भगवान् शंकर का ध्यान करना चाहिये। ध्यान करते समय यह धारणा करे कि उनके पाँच मुख तथा दस भुजायें हैं तथा वे स्फटिक की तरह चमकीले हैं। नाना प्रकार के आभूषणों तथा रंगीन वस्त्रों से विभूषित हैं। तत्पश्चात् दहन, प्लावन आदि तान्त्रिक क्रियाओं आदि के माध्यम से अपने आपको शिवरूप में कल्पित कर पूजा आरंभ करे। अपने शरीर को शुद्ध करके मूल मन्त्र[1] का न्यास करे। सर्वत्र पाँच ब्रह्मों (सद्योजातादि) को ॐकार के साथ क्रम से स्थिर करे। इसी प्रकार अन्यान्य क्रियाओं को करते हुए पाद्य, अर्घ्य आदि षोडशोपचार से पूजा सम्पन्न करे। इस पुराण में अलग-अलग स्थलों पर लिंगार्चन की विधि विस्तार से बतायी गयी है।

अन्त में कहा गया है कि जो निम्नलिखित मन्त्रों से एक बार भी लिंगार्चन करता है वह मुक्त हो जाता है। अभिषेक संबंधी मन्त्र इस प्रकार हैं-पवमान, वामसूक्त (जो **'अस्य वामस्य'** से प्रारंभ होता है), रुद्र (रुद्राध्याय अथवा शतरुद्रिय) मंत्र, नीलरुद्र (अथर्ववेदसंहिता का रुद्र मन्त्र), श्रीसूक्त (ऋग्वेद का), रात्रिसूक्त (ऋग्वेद का), चमका होतार, अथर्वशिरस्, शान्ति, भरुण्ड, आरुण, वारुण, ज्येष्ठ, वेदव्रत, रथन्तर, पुरुषसूक्त, त्वरितरुद्र (जो **'यो रुद्रो'** से प्रारंभ होता है तथा तैत्तिरीय संहिता 5/5/9/3 से लिया गया है), कपि, कपर्दि, सामं आवो राजानम्, बृहच्चंद्र, विष्णु, विरूपाक्ष मन्त्र,

1. 'ॐ नमः शिवाय' का न्यास करे।

स्कन्द(ऋग्वेद के 100 मंत्रों का समूह), पंचब्रह्म, पंचाक्षर मंत्र अथवा मात्र प्रणव से। उपरोक्त मंत्र अथवा मन्त्रों द्वारा शिव का अभिषेक करने के बाद षोडश उपचार से पूजा करनी चाहिये(लिंग पु. 1/27/40-48)।

जो लोग भगवान् शिव की लिंगरूप में निम्नलिखित तरीके से नित्य पूजा करते हैं, वे जन्ममरण से मुक्त हो जाते हैं-गंध, माला, धूप, दीप, स्नान, होम, बलि, प्रार्थना, मन्त्रोच्चार तथा भेंट निवेदन करना(लिंग पु. 2/47/12)।

एक स्थल पर रेत या धूल के शिवलिंग की उपासना का प्रकरण आया है। पराशर ने धूल एकत्र कर लिंग बनाया तथा उसकी शिवसूक्त, त्र्यम्बकसूक्त, त्वरितरुद्र, शिवसंकल्प, नीलरूद्र, रुद्र, वामीय, पवमान, पंचब्रह्म, होतृसूक्त, लिंगसूक्त तथा अथर्वशिरस् मंत्रों से उसकी उपासना की तथा अष्टांग अर्घ्य निवेदन किया। तदनन्तर उन्होंने शिव का दर्शन पाया। इस प्रकरण से यही शिक्षा मिलती है कि हमें भी इन मंत्रों से लिंगार्चन करना चाहिये।

सूतजी शिवपूजा के सन्दर्भ में कहते हैं कि विश्वास के बलपर शिव को प्रसन्न कर देखा एवं उनसे वार्तालाप किया जा सकता है। जो लोग भक्तिहीन हैं वे भी अगर प्रसंगवश शिव की पूजा कर लेते हैं तो उन्हें भी उनकी भावना के अनुसार फल प्राप्त होता है (लिंग पु. 1/79/4)। जो व्यक्ति अभक्ष्य भक्षी है वह शिव की पूजा करने पर यक्ष बनता है। अत: पूजक को भक्ष्याभक्ष पर विचार अवश्य करना चाहिये(लिंग पु. 1/79/6)। शिव की गायत्री द्वारा पूजा करने पर प्रजापति का तथा प्रणव द्वारा करने पर विष्णु का अथवा ब्रह्मा का लोक प्राप्त होता है। (लिंग पु. 1/79/8)

लिंग को शुद्ध जल से स्नान कराना चाहिये। उसके बाद वेदी में भगवान् शिव का भक्तिपूर्वक आवाहन करना चाहिये, तदनन्तर पाद्य, आचमन तथा अर्घ्य निवेदन करना चाहिये। इसके बाद शुद्ध जल, घी तथा दूध से स्नान कराना चाहिये। फिर क्रमश: दही एवं शुद्ध जल से। इसके बाद चन्दन, लाल फूल, बिल्वपत्र, लाल एवं नीले कमल, नन्द्यावर्त फूल, मल्लिका, चम्पक जाति के पुष्प, बकुल, करवीर, शमी और वृहत् के फूल, उन्मत्त, अगस्त, अपामार्ग के फूल तथा सुन्दर आभूषणों से पूजा करनी चाहिये। पुन: पाँच प्रकार के धूप तथा दूध की खीर का नैवेद्य अर्पण करे। अन्य प्रकार के भी नैवेद्य भेंट करे। इसके बाद परिक्रमा तथा नमस्कार करे। फिर स्तुति और पूजा कर भक्तिपूर्वक ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं सद्योजात आदि मन्त्रों का जप करे(लिंग पु. 1/79/10-23)।

उपरोक्त प्रकार की पूजा एक बार भी सम्पन्न करनेवाले को शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। अकस्मात् इस प्रकार की शिव-पूजा होती हुई देखनेवाला भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है। मंदिर में शिवपूजा के निमित्त दीपदान करनेवाला भी शिवलोक में पूजा जाता है। पूजा के समय आवाहन, सांनिध्य तथा स्थापन तथा पूजन रुद्र गायत्री से, आसन प्रणव से, स्नान सद्योजात आदि पाँच मन्त्रों से करना चाहिये। प्रणव के द्वारा दाहिनी तरफ ब्रह्मा की तथा उत्तर दिशा में गायत्री के द्वारा विष्णु की

पूजा सद्योजातादि पाँच मन्त्रों में ॐकार जोड़कर पाँच आहुतियाँ देने के बाद करे। इस प्रकार पूजा करने से शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है(लिंग पु. 1/79/32-37)।

उषाकाल में शिवलिंग के दर्शन से सर्वोच्च लक्ष्य की सिद्धि होती है। दोपहर में दर्शन करने से यज्ञ का फल तथा सांयकाल में दर्शन से सभी प्रकार के यज्ञ का फल प्राप्तकर मुक्ति हो जाती है; साथ ही शरीरिक, मानसिक तथा वाचिक सभी प्रकार के बड़े पापों से तथा अन्य छोटे-छोटे पापों से भी मुक्ति मिल जाती है। संक्रान्तिकाल में लिंग के दर्शन आदि से व्यक्ति महीने भर के पापों से छूट जाता है तथा शिवधाम को जाता है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन की संक्रान्ति तथा विषुव योग(जिस समय दिन एवं रात बराबर होते हैं) में शिवलिंग का दर्शन भी पापों से छुड़ाकर उत्तम लक्ष्यों की प्राप्ति कराता है। शुद्धआत्मा शिवलिंग की सव्य अथवा अपसव्यरूप से(अर्थात् दक्षिणावर्त या वामावर्त) तीन बार परिक्रमा कर पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

यः प्रातर्देवदेवेशं शिवं लिङ्गस्वरूपिणम्।
पश्येत्सयाति सर्वस्मादधिकां गतिमेव च।।
मध्याह्ने च महादेवं दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत्।
सायाह्ने सर्वयज्ञानां फलं प्राप्य विमुच्यते।।
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च महत्तरैः।
तथोपपातकैश्चैव पापैश्चैवानुपातकैः।।
सङ्क्रमे देवमीशानंदृष्ट्वा लिङगाकृतिंप्रभुम्।
मासेनयत्कृतंपापंत्यक्त्वायातिशिवंपदम्।।
अयने चार्द्धमासेन दक्षिणे चोत्तरायणे।
विषुवे चैव सम्पूज्य प्रयाति परमाङ्गतिम्।।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्य्याद् यः प्रासादं समन्ततः।
सव्यापसव्यन्यायेन मृदुगत्या शुचिर्नरः।।
पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात्। (लिंग पु. 1/77/60-66)

(4) शिवप्रतिमास्थापन एवं मन्दिरनिर्माण

भगवान् शिव की पूजा लिंग एवं मूर्ति दोनों में होती है। लिंगपूजा भगवान् शिव के निर्गुण, सर्वव्यापी एवं सर्वदेवमयरूप की उपासना है। मूर्ति के रूप में उपासना करने के लिये भगवान् शिव की नाना प्रकार की मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। इन भिन्न-भिन्न मूर्तियों की स्थापना के फल भी भिन्न-भिन्न बताये गये हैं। भगवान् शिव की प्रतिमा को उत्तम आसन पर बैठाकर उमा एवं स्कंद के साथ स्थापित करने पर उपासक की मनोकामना पूर्ण होती है। शास्त्रविधि के अनुसार भगवान् शिव की ऐसी प्रतिमा, जिसमें वे एक पैर, चार भुजायें, तीन आँखें तथा त्रिशूल धारण किये हुए हैं तथा जो

समस्त चराचर की सृष्टि करने के बाद इस रूप में स्थित हैं, की स्थापना करने से शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। शिव की ऐसी प्रतिमा जिसमें उनके तीन पैर, सात बाजू, चार सींग और दो शिर हैं, की स्थापना से व्यक्ति विष्णुलोक में पूजित होता है। इसी प्रकार साँढ़पर उमा के साथ सवार शिव, जिनके सिरपर चन्द्रमा भी हो, की प्रतिमा स्थापित करने पर हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर व्यक्ति मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार से अन्य प्रकार की मूर्तियों की स्थापना के फल इस पुराण में बताये गये हैं (लिंग पुराण – पूर्वभाग – अध्याय – 76)।

शिवमूर्तियों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार गंधादि से पूजा कर '**ॐ नमो नीलकंठाय**' इस अष्टाक्षर मन्त्र के एक बार के जप से ही व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है तथा शिवलोक में पूजित होता है (लिंग पुराण – पूर्वभाग – अध्याय 1/76/44 – 46)।

शिवमन्दिर एवं शिव की मूर्ति बनाने की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि अगर खेल – खेल में भी मिट्टी अथवा पत्थर व रेत से भगवान् शिव की मूर्ति और मन्दिर बनाकर उनकी पूजा करें तो शिवसायुज्य की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये धर्म, काम तथा अर्थ की सिद्धि के लिये भक्तिपूर्वक शिवालय में पूजा करे तथा उसका निर्माण भी करें।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्या भक्तैः शिवालयम्।
कर्तव्यं सर्वयत्नेनधर्मकामार्थसिद्धये।। (लिंग पु. 1/77/6)

इस पुराण में नाना प्रकार के शिवालयों, जैसे – केशर, नागर, द्राविड़, कैलास, मन्दर, मेरु, निषध, हिम शैल, नीलाद्रिशिखर, महेन्द्र शैल आदि, के निर्माण का फल बताया गया है। इन भिन्न – भिन्न शैली में निर्मित शिवालयों को बनानेवाला या तो रुद्रलोक जाता, मुक्त हो जाता अथवा शिवसायुज्य को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो लोग रत्नजटित एवं सुवर्णमय मंदिर का निर्माण विधिपूर्वक करते हैं उनको विशेष फल मिलता है, जिसका वर्णन युगों में भी नहीं हो सकता ।

मन्दिर बनाने से ज्यादा फल मन्दिर के मरम्मत से प्राप्त होता है। इसलिये जो लोग मंदिर नहीं बनवा सकते उन्हें पुराने मंदिरों में हुई टूट – फूट की मरम्मत करानी चाहिये। जीर्ण, गिरे हुए अथवा खंडित शिवालय में नाना प्रकार के मरम्मत करानेवाले को मंदिरनिर्माता से ज्यादा पुण्य प्राप्त होता है।

जीर्णं वा पतितं वापि खण्डितं स्फुटितंतथा।।
पूर्ववत्कारयेद्यस्तु द्वाराद्यैः सुशुभं द्विजाः!।
प्रासादं मण्डपं वापिप्राकारंगोपुरंतुवा।।
कर्त्तुरप्यधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः। (लिंग पु. 1/77/24 – 26)

पुनः यह बताया गया है कि जो व्यक्ति अपनी रोजी – रोटी चलाने हेतु भी मंदिर में सेवा – कार्य करता है वह भी अपने परिवारसहित स्वर्ग को चला जाता है। अगर कोई व्यक्ति अपनी कामना – सिद्धि के लिये शिवालय में एक बार भी सेवाकार्य करता है तो उसे आनंद की प्राप्ति होती है। जो भक्ति

अथवा श्रद्धा से लकड़ी एवं ईटों आदि से शिवालय बनवाता है वह शिवलोक में सम्मानित होता है। अतः शिव की प्रसन्नता, धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्रयत्नपूर्वक शिवालय का निर्माण करना चाहिये।

वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म्म शिवालये।।
यः सयातिनसन्देहः स्वर्गलोकंसबान्धवः।
यश्चात्मभोगसिद्ध्यर्थमपिरुद्रालये सकृत्।।
कर्म्म कुर्य्याद् यदि सुखं लब्ध्वा चापि प्रमोदते।
तस्मादायतनं भक्त्या यः कुर्य्यान्मुनिसत्तमाः।।
काष्ठेष्टकादिभिर्मर्त्यः शिवलोके महीयते।
प्रसादार्थं महेशस्य प्रासादो मुनि पुङ्गवाः।।
कर्त्तव्यः सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये। (लिंग पु. 1/77/26-30)

अगर कोई व्यक्ति शिवालय बनवाने में असमर्थ है तो उसे शिवालय में झाड़ू-पोछा आदि कार्य द्वारा सेवा करनी चाहिये। ऐसा करने से उसकी मनोकामना पूरी होती है और एक महीने के अन्दर ही उसे एक हजार चान्द्रायणव्रत का फल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सुगंधित एवं छाने हुए शुद्ध जल एवं गाय के गोबर के मिश्रण से आलेपन करने से एक वर्ष के चान्द्रायण व्रत का फल प्राप्त हो जाता है।

अशक्तश्चेन्मुनिश्रेष्ठाः! प्रासादं कर्त्तमुत्तमम्।।
सम्मार्जनादिभिर्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
सम्मार्जनं तु यः कुर्य्यान्मार्जन्या मृदु सूक्ष्मया।।
चान्द्रायणसहस्रस्य फलं मासेन लभ्यते।
यः कुर्य्याद्वस्त्रपूतेन गन्धगोमयवारिणा।।
आलेपनं यथान्यायं वर्षचान्द्रायणं लभेत्। (लिंग पु. 1/77/30-33)

स्थापित शिवलिंग के आस-पास का क्षेत्र शिवक्षेत्र कहलाता है। बाणलिंग तथा स्वयंभू लिंग के चारों तरफ एक मील का क्षेत्र, आर्ष(साधुओं द्वारा स्थापित लिंग) के चारों ओर आधा मील का क्षेत्र, तथा मानुष(मनुष्यों द्वारा स्थापित) लिंग के चारों तरफ का चौथाई मील का क्षेत्र शिवक्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र में प्राण त्यागने से शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है(लिंग पु. 1/77/33-37)।

शिवक्षेत्र के दर्शन से सौ गुना पुण्य क्षेत्र में प्रवेश करने से, प्रवेश से सौ गुना पुण्य स्पर्श एवं परिक्रमा से तथा इससे सौ गुना पुण्य जल द्वारा स्नान कराने से प्राप्त होता है। देवता को दूध से स्नान कराना जल से सौ गुना अच्छा है, जबकि दही से स्नान कराना हजार गुना तथा शहद से लाख गुना अच्छा है। घी से स्नान कराना अनन्त गुना तथा शर्करा से स्नान कराना इससे भी सौ गुना पुण्यदायक

है। (वही 1/77/48-51)

शिवक्षेत्र में स्थित सभी नदियाँ, कुएँ, तालाब तथा झीलें शिवतीर्थ कहलाती हैं। इन तीर्थों में भक्तिपूर्वक प्रातःकाल स्नान करनेवाला अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता तथा रुद्रलोक को जाता है। दोपहर में स्नान करनेवाला गंगास्नान का फल पाता तथा सूर्यास्त के बाद स्नान करनेवाला शिवलोक को जाता है। शिवक्षेत्र में त्रिकाल स्नान करनेवाला शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।(लिंग पु. 1/77/52-58)

जो भक्तिपूर्वक(शिवालय के) गर्भगृह की चारों तरफ से सफाई कर लीपता है तथा चारों ओर सुगन्धित पुष्प फैलाकर चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य निवेदित करता तथा चार प्रकार के धूप से उसे सुवासित कर ईश्वर की प्रार्थना करता है वह शिवलोक को जाता है।

यस्तु गर्भगृहं भक्त्या सकृदालिप्य सर्वतः।
चन्दनाद्यैः सकर्पूरैर्गन्धद्रव्यैः समन्ततः।।
विकीर्य्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्धूप्य चतुर्विधैः।
प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति।। (लिंग पु. 1/77/101-102)

शिवक्षेत्र की सफाई तथा लीपने का कार्य वस्त्र से छाने हुए शुद्ध जल से करना चाहिये अन्यथा सिद्धि प्राप्त नहीं होती। नदी से(अथवा अन्य कहीं से) प्राप्त जल में झाग नहीं होना चाहिये। इसे कपड़े से छान देने पर शुद्ध हो जाता है। सभी प्रकार के देवकार्य शुद्ध एवं छाने हुए जल से ही संपादन करने चाहिये क्योंकि जल में सूक्ष्म कीटाणु होते हैं। इस कारण से वहाँ हिंसा की संभावना होती है। देवकार्य में हिंसा से बचना चाहिये। परन्तु देवकार्य के लिये पुष्प आदि तोड़ने से हुई हिंसा(पुष्पहिंसा) क्षम्य होती है(लिंग पु. 1/78/1-4, 14)।

(5) शिव संबंधी पंचाक्षर मन्त्र

इस पुराण में भगवान् शिव ब्रह्माजी से कह रहे हैं कि इस संसार में ज्ञान के तथा योग के अनेक मार्ग हैं, परन्तु बिना पंचाक्षर मन्त्र के मोक्ष को पाना संभव नहीं है।

योगमार्गाअनेकाश्चज्ञानमार्गास्त्वनेकशः।
न निर्वृतिमुपायान्तिविनापञ्चाक्षरींक्वचित्।। (लिंग पु. 1/24/136)

सभी प्रकार के शिवव्रतों की समाप्ति पंचाक्षर मन्त्र के जप से ही करनी चाहिये अन्य तरीके से नहीं।

जपादेव न सन्देहोव्रतानांवै विशेषतः।
समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पञ्चाक्षरींशुभाम्।। (लिंग पु. 1/85/2)

इस पुराण के पूर्वभाग के 85 वें अध्याय में विस्तार से पंचाक्षर मंत्र के बारे में चर्चा की गयी है। यहाँ हम संक्षेप में ही इसकी चर्चा करेंगे। यह मन्त्र शिव की ही अभिव्यक्ति है। प्रलय के समय सभी वेद-शास्त्र पंचाक्षर मंत्र में स्थित होते हैं। शिव की शक्ति से उनका विनाश नहीं होता, वे सुरक्षित बने

रहते हैं(लिंग पुराण 1/85/9)। यह मंत्र शिव के पाँचों मुखों से निकले एक-एक अक्षरों के मेल से बना है। सृष्टि के आदि में यह मन्त्र शिव से ब्रह्मा को प्राप्त हुआ(लिंग पु. 1/85/14-16)। इस मन्त्र को वेदों का सार तथा मुक्तिदाता कहा गया है(लिंग पु. 1/85/29)। यह तीनों गुणों से परे वेदस्वरूप है, यह सर्वकर्मा साक्षात् सर्वज्ञ शिव है(लिंग पु. 1/85/32)। एकाक्षर ॐकार में सर्वव्यापी शिव विराजमान होते हैं। पंचाक्षर उनका शरीर है। इस तरह षडक्षर मन्त्र(ॐ **नमः शिवाय**) में शिव वाच्य-वाचक भाव से स्थित होते हैं अर्थात् मंत्र वाचक तथा शिव वाच्य हैं(लिंग पु. 1/85/32-34)।

पंचाक्षर(अथवा किसी अन्य) मन्त्र के जप से पहले मंत्र के ऋषि, छन्द, बीज, शक्ति तथा आत्मा के उच्चारण के बाद अंग, कर एवं देह न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मूल मंत्र का जप करना चाहिये। इस पुराण में पंचाक्षरमन्त्र के ऋषि, छन्द, न्यासादि का विस्तृत वर्णन किया गया है। संक्षेप में इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छंद पंक्ति तथा देवता शिव हैं। 'न' आदि अक्षर बीज हैं जो पाँच तत्त्वों के रूप में हैं। इस मन्त्र का आत्मा प्रणव तथा शक्ति देवी हैं।

वामदेवोनामऋषिःपङ्क्तिश्छन्दउदाहृतः।।
देवता शिव एवाऽहं मन्त्रस्याऽस्यवरानने।
नकारादीनिबीजानिपञ्चभूतात्मकानिच।।
आत्मानंप्रणवंविद्धिसर्वव्यापिनमव्ययम्।
शक्तिस्त्वमेव देवेशि! सर्वदेवनमस्कृते।। (लिंग पु. 1/85/41-43)

इस मन्त्र के ओंकार का स्वर उदात्त, ऋषि ब्रह्मा, शरीर श्वेत, छन्द(देवी) गायत्री, देवता परमात्मा है। इस मन्त्र(पंचाक्षर) का प्रथम(न), द्वितीय(मः) और चतुर्थ(वा) अक्षर उदात्त, पाँचवा(य) स्वरित(न उच्च न निम्न) तथा तीसरा(शि) अक्षर निषाद(निषध) है। 'न' कार पीत वर्ण का तथा पूर्वमुख से उत्पन्न है। इन्द्र इसका देवता, गायत्री छन्द और गौतम ऋषि हैं। 'मः' कृष्ण वर्ण का, दक्षिणमुख से उत्पन्न, अनुष्टुप छन्द, अत्रि ऋषि तथा रुद्र इसके देवता हैं। 'शि' धूम्र वर्ण का, पश्चिममुख से उत्पन्न, विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द तथा विष्णु इसके देवता हैं। अक्षर 'वा' सुवर्ण के वर्ण का, उत्तरमुख से उत्पन्न, ब्रह्मा इसके देवता, वृहती छन्द तथा अंगिरा ऋषि हैं। अक्षर 'य' रक्त वर्ण का, ऊपरवाले मुख से उत्पन्न, छन्द विराट, भरद्वाज ऋषि तथा स्कन्द इसके देवता हैं(लिंग पु. 1/85/46-53)।

इसके अनन्तर इस पुराण में विस्तार के साथ उत्पत्ति, स्थिति तथा संहृतिरूप तीन प्रकार के न्यासों की चर्चा है। विस्तार से बचने के लिये इनकी चर्चा यहाँ नहीं की जायगी। पंचाक्षर मंत्र के जप से पहले मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, आत्मा और गुरु का उच्चारण करने के बाद अंगन्यास, देहन्यास तथा करन्यास करना चाहिये। तदनन्तर मूलमंत्र का यथाविधि जप करना चाहिये।

किसी सुयोग्य गुरु से मंत्र को प्राप्त करने के उपरान्त ही जपना चाहिये। निम्नलिखित प्रकार के मन्त्र निष्प्रभावी होते हैं- आज्ञाहीन(अर्थात् ऐसा मन्त्र जो बिना आज्ञा के प्राप्त किया गया है),

क्रियाहीन(अर्थात् जिसमें न्यासादि क्रियाएँ न की जायँ), श्रद्धाहीन, अमानस(जिस जप में पूरी तरह से एकाग्रता न हो), आज्ञप्तम्(अर्थात् जिसका निषेध हो), दक्षिणाहीन(अर्थात् आज्ञा सिद्ध तो है पर वह दक्षिणा से हीन है) और सदाजप्त(अर्थात् जिसका अंधाधुंध हरसमय जप किया जाय)। अत: प्रभावी होने के लिये मन्त्र को आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध, सुमानस और दक्षिणासिद्ध होना चाहिये(लिंग पु. 1/85/83-85)।

जप पूर्व या उत्तर दिशा में बैठकर प्राणायाम करने के बाद शुरू करना चाहिये। घर में, गऊशाला में, नदी के किनारे, शिव के आगे, समुद्र के किनारे, पहाड़ पर, मन्दिर में तथा पवित्र कुटी में किया हुआ जप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है। शिव(मूर्ति अथवा लिंग) के, सूर्य के, गुरु के, दीपक के, गाय के अथवा जल के सामने जप करना अच्छा होता है। इसी प्रकार अँगुली से, रेखा से, पुत्रजीव की माला से, शंख एवं मणि की माला से, मूंगे की माला से, स्फटिक की माला से, मुक्ता की माला से, कमल के बीज की माला से, सुवर्ण की माला से, कुश ग्रन्थि की माला से तथा रुद्राक्ष की माला से गिनती किया हुआ जप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है(लिंग पु. 1/85/106-111)।

अँगूठे से किया हुआ जप मोक्षदायक होता है। जपयज्ञ सभी प्रकार के यज्ञों से बढ़कर है। बिना अँगूठे की मदद से किया गया कोई भी जप-कर्म फलदायक नहीं होता। अत: अँगूठे से ही जप करना चाहिये।

अङ्गुष्ठ मोक्षदं.....। (लिंग पु. 1/85/114)

शृणुष्व सर्वयज्ञेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते।। (लिंग पु. 1/85/116)

आगे जपयोग की विशेषता बताते हुए कहा गया है कि-

हिंसया ते प्रवर्त्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया।
यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युःप्रदानानि तपांसि च।।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। (लिंग पु. 1/85/117-118)

अर्थात्-सभी प्रकार के यज्ञों, दानों तथा तपों को जपयज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं माना गया है। अन्य प्रकार के यज्ञों में हिंसा होती है पर जपयज्ञ में किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती।

वाचिक, उपांशु तथा मानसिक-तीन प्रकार के जप होते हैं। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। वाचिक से उपांशु सौ गुना तथा उपांशु से मानसिक सौ गुना श्रेष्ठ होता है(लिंग पु. 1/85/119)। अत: यथासंभव मानसिकरूप से जप करना चाहिये। लगातार जप से देवता के प्रसन्न हो जाने पर भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त हो जाता है। जप करनेवाले को यक्ष, राक्षस, पिशाच तथा ग्रह परेशान नहीं करते। पंचाक्षर के जप से पिछले जन्मों के पापों का भी नाश हो जाता है तथा आनंद, सिद्धि तथा मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यहाँतक कि मृत्यु को भी जप के द्वारा जीता जा सकता है(लिंग पु. 1/85/123-127)।

पुन: कहा गया है कि सदाचार के बिना सभी प्रकार की जप आदि क्रियायें निष्फल होती हैं।

अतः जप विधि आदि को सीखने के बाद सदाचार के नियमों का पालन करना चाहिये(लिंग पु. 1/85/127-128)। इस पुराण में, जप करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये, उसका विस्तार से वर्णन किया गया है। जैसे पगड़ी के साथ, नग्न अवस्था में, खुले बालों के साथ, अशुद्ध अवस्था में अथवा अशुद्ध हाथ से जप नहीं करना चाहिये। बातचीत करते हुए भी जप नहीं करना चाहिये। क्रोध, मद, क्षुधा, तन्द्रा, थूकना, जँभाई लेना, कुत्ते तथा नीच व्यक्तियों की ओर देखना, निद्रा तथा प्रलाप-जप के दौरान वर्जित हैं। अगर कभी ऐसा हो जाय तो उसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ग्रह तथा नक्षत्रों के दर्शन कर लेना चाहिये ताकि शुद्धि हो सके। अगर क्रोधादि हो जाय तो आचमन एवं प्राणायाम के बाद जप जारी किया जाना चाहिये। टाँगें फैलाकर या मुर्गे के आसन में बैठकर, लेटकर या बिना आसन पर बैठे जप नहीं करना चाहिये। गली में, शूद्रों[1] की उपस्थिति में, चारपायी पर तथा खून बिखरे फर्श पर जप नहीं करना चाहिये(लिंग पु. 1/85/156-161)।

मन्त्र जप करते समय अर्थ का चिन्तन भी करें। जप करने के लिये रेशम के कपड़े, व्याघ्रचर्म, सूती कपड़े आदि, लकड़ी के तख्त या ताड़पत्र पर आसन ग्रहण करना चाहिये। तीनों संध्यायों में गुरु की पूजा की जानी चाहिये(लिंग पु. 1/85/162-163)। गुरु के प्रसन्न या संतुष्ट हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवगण तथा ऋषिगण प्रसन्न हो आशीर्वाद देते हैं। गुरु संतुष्ट होकर अपने मन्त्र के द्वारा पापों को जला देते हैं।

गुरुस्तुष्टो दहत्येवं पापं तन्मन्त्रतेजसा।
ब्रह्मा हरिस्तथा रुद्रो देवाश्च मुनयस्तथा।।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः। (लिंग पु. 1/85/173-174)

इस पुराण में मन्त्र लेनेवाले को गुरु के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है जिसकी चर्चा यहाँ संभव नहीं है। अन्त में इतना कहना अवश्यक है कि मन्त्र की सिद्धि गुरुकृपा से ही संभव है।

11 बार पंचाक्षर मन्त्र के जप द्वारा निम्नलिखित क्रियाएँ करनी चाहिये- प्रोक्षण, अभिषेक, अघमर्षण, सन्ध्या तथा दोनों समय का स्नान।

प्रोक्षणञ्चाऽभिषेकञ्च अघमर्षणमेव च।।
स्नाने च सन्ध्ययोश्चैव कुर्य्यादेकादशेनवै। (लिंग पु. 1/85/186-187)

(6) पशु, पाश एवं पशुपति

ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी प्राणी पशु कहलाते हैं तथा वे भव-चक्र में घूमते रहते हैं। इन पशुओं के स्वामी शिव को पशुपति कहा जाता है। वे अनादि, अव्यय एवं सर्वव्यापी पुरुष पशुओं को अपनी माया से बाँधते हैं तथा उन्हें मुक्त भी करते हैं। पशुपति के अतिरिक्त सभी माया-पाश

1. यहाँ 'शूद्र' का अर्थ नीच पुरुष है। अर्थात् जो सदाचार से हीन एवं नास्तिक है।

से बँधे हुए हैं अत: उनके सिवा कोई भी मोचक नहीं हो सकता। प्रकृति के चौबीस तत्त्व ही पशुपति के पाश हैं जिनसे वे पशुओं को बाँधते हैं। प्रकृति के चौबीस तत्त्व जो पाश का निर्माण करते हैं, वे निम्न हैं – महत्, अहंकार, पाँच (रूप, रस, गंध, शब्द तथा स्पर्श) तन्मात्राएँ, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, पाँच (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश) स्थूल तत्त्व तथा प्रधान या अव्यक्त (प्रकृति)। जीव पच्चीसवाँ तत्त्व है जो प्रकृति के इन चौबीस तत्त्वों द्वारा बाँधा जाता है। पशुपति की उपासना अन्तर्मन से उत्पन्न दस इन्द्रियों से मुक्त कर देती है। तदनन्तर तन्मात्राओं के बंधन से मुक्त करती हैं। पशुपति उन्हीं को बाँधते हैं जो इन्द्रिय – गोचर वस्तुओं के सुख के बंधन से बँधे हैं।

प्रकृति के तीन गुणों – रज, तम एवं सत् से ब्रह्मा से लेकर तिनकेतक की वस्तुएँ बँधी हुई हैं। पशुओं को भगवान् शिव पंचक्लेशों के माध्यम से बाँधते तथा उपासित होने पर मुक्त करते हैं। द्विपद जीवों के लिये ये पाँच क्लेश, जो बन्धनरूप हैं, निम्न हैं – अविद्या, अस्मिता (अहंकार), राग, द्वेष और अभिनिवेश (सांसारिक सुखोपभोग की नैसर्गिक लिप्सा फलस्वरूप जीने की तृष्णा अथवा मरने का भय)।[1] योगपरायण व्यक्ति अविद्या को तमस्, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामिस्र, अभिनिवेश और मिथ्या ज्ञान को अन्धतामिस्र कहते हैं (लिंग पु. 2/9/28 – 33)।

तमस् और मोह आठ – आठ प्रकार के होते हैं। महामोह दस प्रकार का तथा तामिस्र और अन्ध तामिस्र अठारह – अठारह प्रकार के होते हैं।[2] अविद्या (तमस) आदि के भेद इस प्रकार हैं –

तमस् (अविद्या) – प्रधान, महत्तत्त्व, अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ – इन आठ अनात्म प्रकृतियों में आत्मा की भ्रान्तिरूप अविद्या – संज्ञक तम आठ विषयवाला होने से आठ प्रकार का है।

मोह (अस्मिता) – गौण फलरूप अणिमा – महिमा आदि आठ ऐश्वर्यों (सिद्धियों) में जो परम पुरुषार्थ भ्रान्तिरूप ज्ञान है, वह अस्मिता – संज्ञक मोह कहलाता है। यह भी अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशितृत्व तथा यत्रकामावसायित्व – इन ऐश्वर्यों के आठ भेद होने के कारण यह भी आठ प्रकार का है।

महामोह (राग) – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसंज्ञक लौकिक और दिव्य विषयों में जो अनुराग है, वह रागसंज्ञक महामोह कहा जाता है। यह भी दस विषयवाला होने से दस प्रकार का है।

तामिस्र (द्वेष) – उपर्युक्त आठ ऐश्वर्यों और दस विषयों के भोगार्थ प्रवृत्त होनेपर किसी प्रतिबन्धक से इन विषयों के भोगलाभ में विघ्न पड़ने से जो प्रतिबन्धकविषयक द्वेष होता है, वह तामिस्र कहलाता है। वह तामिस्र आठ ऐश्वर्यों और दिव्य एवं अदिव्य दस विषयों के प्रतिबन्धक होने से अठारह प्रकार का है।

1. पतंजलि के योग – दर्शन में भी ये ही पाँच क्लेश बताये गये हैं (योगसूत्र 2/3)।

2. सांख्य कारिका में भी इसी प्रकार का वर्णन है (सा. का. 48)। हम यहाँपर इन भेदों का खुलासा सांख्यकारिका के ही आधार पर करेंगे क्योंकि इनका लिंग पुराण में खुलासा नहीं किया गया है, क्योंकि वहाँ यह मानकर चला गया है कि पाठक इन सबसे पहले से ही परिचित हैं।

अन्धतामिस्र(अभिनिवेश)-आठ प्रकार के ऐश्वर्य और दस प्रकार के विषय-भोगों के उपस्थित होनेपर भी जो चित्त में भय रहता है कि यह सब प्रलयकाल में(अथवा मृत्यु होनेपर) नष्ट हो जायँगे, यह अभिनिवेश अन्धतामिस्र कहलाता है। अभिनिवेशरूप अन्धतामिस्र भी उपर्युक्त अठारह के नाश का भयरूप होने से अठारह प्रकार का है।

भगवान् शिव का अविद्या से संबंध अतीत एवं अनागत का नहीं हो सकता। अर्थात् भगवान् शिव न तो कभी अविद्या के प्रभाव में थे और न कभी होवेंगे। सामान्य जीव अनादि काल से अविद्या के प्रभाव में रहता है और भविष्य में मुक्त हो जानेपर अविद्या से उसका कोई संबंध नहीं रह जाता। इसी प्रकार शिव का द्वेष से कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वव्यापी अथवा सर्वस्व हैं। अभिनिवेश(मृत्यु का भय) से भी उनका कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे माया से परे हैं तथा वे ही सबके परम धाम हैं। तीनों कालों में शिव का माया से कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे अविद्या से परे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि शिव पर कभी भी तीनों काल में अविद्या हावी नहीं हो सकती। क्रिया करने के बाद भी शिव माया से निर्लिप्त रहते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप होने की वजह से शिव क्षणभंगुर सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होते, वे नियति और भाग्य से भी अप्रभावित रहते हैं। इसी प्रकार शिव में राग और अस्मिता का भी अभाव होता है।

भगवान् शिव परम शुभ एवं परम गुरु हैं। वे नित्य शुद्ध एवं बुद्ध हैं। उनका इस जगत् में कोई प्रयोजन नहीं है। उनकी सभी प्रकार की क्रियाओं का प्रयोजन मात्र पशुओं पर अनुग्रह करना है ताकि वे पाशों से मुक्त हो सकें।

आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि।
प्रयोजनं समस्तानां कार्य्याणां परमेश्वरः।। (लिंग पु. 2/9/49)

प्रकृति या माया के पाशों से मुक्त होने के लिये अनेक उपाय सुझाये गये हैं। भगवान् शिव या पशुपति के अनुग्रह से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। भगवान् शिव का अनुग्रह पाने का प्रयास करना ही पशुत्व से मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता है। उनका अनुग्रह पाने के लिये ही सभी प्रकार की पूजा, तप, योग, ज्ञान आदि का सेवन किया जाता है।

(7) पाशमुक्ति के उपाय

पाश-मुक्ति के अनेक उपायों में भक्ति, ज्ञान, पाशुपतव्रत तथा पाशुपत-योग प्रमुख हैं। पाशबद्ध जीवों को मुक्ति प्राप्त करने का सबसे सुगम एवं प्रभावशाली साधन भक्ति है। ये चारों साधन एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं परन्तु इनमें किसी खास पहलू पर ज्यादा बल दिया जाता है। उदाहरण के लिये भक्ति में विश्वास, भावना एवं प्रेमपर तो ज्ञानमें आत्म-संयम बुद्धि और विवेकपर तथा पाशुपत योग में ध्यानपर। ये साधन अलग-अलग तरह के भक्तों के लिये बनाये गये हैं।

जो भगवान् शिव के भक्त हैं वे अवश्य ही मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान, वेदों के उपदेश, देवताओं

के निमित्त दान, ध्यान, व्रत, तप, तथा वेदाध्ययन आदि भगवान् शिव की भक्ति बढ़ाने के साधन हैं। हजारों चान्द्रायणव्रत, सैकड़ों प्राजापत्यव्रत तथा नाना प्रकार के व्रत आदि धार्मिक क्रियाओं के फलस्वरूप शिवभक्ति पैदा होती है। जिनमें शिवभक्ति का अभाव है वह कर्मों के चक्कर में घूमता रहता है। भक्त अपनी भक्ति के बलपर मुक्त हो जाता है(लिंग पु. 1/10/32-35)।

पार्वती द्वारा पूछे जाने पर कि आप किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं? तथा किस प्रकार पूजे जाते हैं? तप, अध्ययन अथवा योग द्वारा? भगवान् शिव कहते हैं कि मैं केवल श्रद्धा द्वारा ही वश में होता हूँ। श्रद्धा सबसे महान् एवं सूक्ष्मतम सद्गुण है। लिंग में मेरी श्रद्धापूर्वक उपासना करनी चाहिये। मेरी पंचमुखी मूर्ति का ध्यान कर पंचाक्षर मंत्र द्वारा लिंग में मेरी पूजा करनी चाहिये। मैं भक्ति के द्वारा स्थूल रूप में भी दिखाई पड़ सकता हूँ। श्रद्धा ही पूर्ण ज्ञान, यज्ञ, तप, स्वर्ग एवं मुक्ति है। मैं सदैव श्रद्धाद्वारा ही देखा जाता हूँ।

श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतंतपः।।
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योऽहं श्रद्धया सदा।। (लिंग पु. 1/10/52-53)

भगवान् शिव में श्रद्धा रखना तथा उनकी सेवा करना ही भक्ति है। भक्ति द्वारा आराधित होनेपर शिवजी पशुओं के बन्धन तत्काल ही खोल देते हैं। वाणी, मन और शरीर से भगवान् की सेवा करना भक्ति कहलाती है। भगवान् शिव के गुणों एवं लीलाओं का चिन्तन करना मानसिक सेवा का रूप है। जैसे भगवान् शिव सत्यस्वरूप, सर्वव्यापी तथा सर्वनियन्ता हैं, वे नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं, सब कुछ उसी की लीला का परिणाम है। इन सब बातों का दिल की गहराईयों से श्रद्धा के साथ चिन्तन करना चाहिये।

प्रणव, पंचाक्षर अथवा अन्य मन्त्रों का जप, शिवलीला तथा उनके गुणों को वाणी द्वारा दूसरे तक पहुँचाना, नाना प्रकार के स्तोत्र आदि का पाठ-वाचिक सेवा कहलाती है। प्राणायाम, लिंगार्चन, मन्दिरनिर्माण, मन्दिर में झाड़ू-पोछा, सफाई आदि की सेवा शारीरिक सेवा अथवा भक्ति कहलाती है।

भगवान् शिव के अन्य नामों में प्रणव को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। अतः प्रणव के जप को इस पुराण में काफी महत्त्व दिया गया है।

प्रणवोवाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवोऽपि परः स्मृतः।। (लिंग पु. 2/9/50)

अर्थात्-परमात्मा शिव का वाचक प्रणव है। इसे शिव, रुद्र आदि शब्दों से श्रेष्ठ समझना चाहिये। प्रणव के जप द्वारा परम शिव को पाया जा सकता है। कहा गया है कि ओंकार को दीप बना अन्तर में शिव के धाम को खोजना चाहिये, शास्त्रों में इसके लिये भटकना व्यर्थ है(लिंग पु. 2/9/55)।

(8) पाशुपतव्रत

इस व्रत के अनेक रूप हैं। 'पाशुपतव्रत' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। कभी यह व्रत विशेष प्रकार की लिंगपूजा को तो कभी ज्ञानसहित ध्यान एवं योग को तो कभी विशेष प्रकार से

प्राणायाम आदि के साथ ॐकार का जप, भस्म सेवन एवं लिंगपूजा को सूचित करता है। वास्तव में यह शब्द किसी भी ऐसे व्रत या साधन को सूचित करता है जिससे पाशों से मुक्ति मिलती हो। हम यहाँ पर कुछ ऐसे ही व्रतों की रूपरेखा, जो लिंग पुराण में निहित है, को प्रस्तुत करेंगे।

विरक्त एवं प्रबुद्ध लोगों के लिये जप से ज्यादा महत्त्व ध्यानयज्ञ का है। आत्मा की प्राप्ति आश्रमधर्म, वेद, यज्ञ, सांख्य, व्रत, तप तथा दान से नहीं होती अपितु ज्ञान से होती है, इसीलिये पाशुपतव्रत को धारण करना चाहिये। पाशुपत व्रतधारी सदैव भस्मशायी होता है। पंचार्थज्ञान से सम्पन्न तथा शिवतत्त्व में समाहित चित्तवाला योग(ध्यान) को धारणकर मुक्त हो जाता है(लिं. पु. 1/86/46-50)। सभी-कुछ शिव से ही उत्पन्न होता, उन्हीं में स्थिर होता तथा उन्हीं में लीन हो जाता है, उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस रहस्य को मन, वाणी और शरीर द्वारा अनुभव करना तथा सत् एवं असत् दोनों को आत्मा में ही देखना चाहिये। सब-कुछ आत्मा में देखनेपर मन को दूसरे विषयों में भटकने से रोका जा सकता है और ध्यानद्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान के लिये हृदयचक्र में मन को एकाग्र करने के लिये कहा गया है(लिंग पु. 1/86/60-64)।

स्पष्ट एवं पूर्ण ज्ञान गुरु के सम्पर्क से प्राप्त होता है। यह ज्ञान राग, द्वेष, असत्य, क्रोध, काम तथा तृष्णा आदि से रहित तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है। अज्ञान के मल से आवृत्त व्यक्ति करोड़ों जन्म में तबतक मुक्त नहीं होता जबतक कि उसका मल नष्ट नहीं हो जाता। बिना पूर्ण ज्ञान के पाप और पुण्यों का नाश नहीं होता और जबतक इनका नाश नहीं होता तबतक आवागमन का चक्र चलता रहता है। इसीलिये मुक्ति के लिये ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये।

पूर्ण ज्ञान गुरु के सम्पर्क से न कि शब्दों से प्राप्त होता है। चतुर्व्यूह[1] के अनुभव तथा गहन चिन्तन के उपरान्त ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। ज्ञान धर्म या सद्गुणों से उत्पन्न होता है तथा इस ज्ञान से वैराग्य और वैराग्य से परम ज्ञान पैदा होता है जो वस्तुओं के अर्थ को प्रकाशित करता है। अर्थात् गुरु का सम्पर्क एवं धर्म के पालन से व्यक्ति ज्ञान एवं वैराग्य से सम्पन्न हो ध्यान के योग्य बन जाता है तथा ध्यान से परम ज्ञान(परमात्मा का ज्ञान) प्राप्तकर मुक्त हो जाता है।(लिंग पु. 1/86/115)

इस पुराण में आगे ध्यान करने की विधि तथा ध्यानी के आचरण करने योग्य बातें बतायी गयीं हैं। वैसे तो ध्यान गुरु की बतायी गयी विधि से करना चाहिये, फिर भी ध्यान की विधि की रूपरेखा इस पुराण में बतायी गयी है। प्रारंभ में शुद्ध सोने की चमक अथवा धूम्ररहित दहकते हुए कोयले के अंगार जैसे रूप का ब्रह्म रन्ध्र में ध्यान करना चाहिये। प्रारंभ में सविषयक ध्यान तथा बाद में निर्विषयक ध्यान करना चाहिये। ध्यान के छः प्रकार क्रमशः दो, चार, छह, दस, बारह तथा सोलह इकाइयोंवाले समय(मात्रा) से युक्त हैं। ध्यानी ध्यान के विषय पर मन को केन्द्रित करने के बाद किसी अन्य वस्तु के बारे में चेतन नहीं होता और

1. चतुर्व्यूह का अर्थ परमात्मा की चार अवस्थाएँ हैं– तैजस, विश्व, प्राज्ञ और तुरीय। सृष्टि की प्रक्रिया परमात्मा के इन चारों स्तरों से सम्बंधित है। इस तथ्य को हृदयंगम करना चतुर्व्यूह का अनुभव करना कहलाता है।

न ही वह अपने आपको किसी अन्य वस्तुओं से जोड़ता है। वह न तो कुछ सुनता है, न सूँघता है, न स्पर्श और स्वाद का अनुभव करता है। वह अपने आप में लीन हो जाता है। आगे बताया गया है कि किस-किस वस्तु का कैसे-कैसे और कहाँ ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करते-करते ध्यानी परम शिव का ज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो जाता है। पाशुपतव्रत का यह ध्यान एवं ज्ञान का मार्ग इस पुराण के पूर्वभाग के 86 वें अध्याय में बताया गया है। यहाँपर उसकी विस्तार से चर्चा संभव नहीं है।

पाशुपत व्रत का दूसरा रूप यह है। पाँच प्रणव मन्त्र से पाँच तत्त्वों का प्राणायाम द्वारा शोधन करे। पहले पाँच प्रणव के साथ पाँच प्राणयाम, फिर चार प्रणव के साथ चार प्राणयाम, फिर तीन प्रणव के साथ तीन और फिर दो प्रणव के साथ दो प्राणायाम करे। उसके बाद ॐकार का उच्चारण कर प्राण एवं अपान को निरुद्ध करे। अपने सभी अंगों में ज्ञान एवं प्रणवरूपी अमृत को भरे तथा तीन गुणों, अहंकार और तन्मात्राओं का शोधन करे। तदनन्तर तत्त्वों, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का शोधन करे। फिर '**अग्निर्भस्मेति**', '**वायुर्भस्मेति**', इत्यादि पाँचों तत्त्वों से सम्बंधित मन्त्र बोलकर सर्वांग में तीनों संध्याओं के समय भस्म को लगाये। ऐसा करने से व्यक्ति को सभी तत्त्वों का ज्ञान हो जायगा। इस प्रकार इस पाशुपतव्रत को करने के बाद शिव की लिंगरूप में पूजा करे। ऐसा करने से वह व्यक्ति एक साल में ही पशुत्व से मुक्ति पा लेता है। शिव की आन्तरिक एवं बाह्य पूजा के साथ-साथ उपरोक्त पाशुपतव्रत को करते रहना चाहिये(लिंग पु. 1/73/10-21)।

पाशुपतव्रत का तीसरा रूप वह है जो लिंगपूजा से संबन्धित है। इस व्रत को बारह साल या बारह महीने अथवा बारह दिनतक करने से पशुत्व से मुक्ति हो सकती है। इस व्रत को द्वादश लिंग भी कहा जाता है। इस व्रत के अन्तर्गत बारह महीनों में विभिन्न रत्नों से निर्मित लिंग की सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित कमलों के द्वारा पूजा की जाती है। इस पूजा में बिल्वपत्र का भी विशेष महत्त्व बताया गया है। लिंगपूजा में इसे अवश्य प्रयोग करें(लिंग पु. 1/81/4-48)।

पाशुपतव्रत का एक अन्य रूप यह है कि व्रती पहले तीनों वेदों के मन्त्रों के प्रयोग द्वारा अग्नि का स्थापन करे। फिर व्रत(उपवास) धारणकर स्नानद्वारा शुद्ध हो सफेद वस्त्र,जनेऊ और सफेद माला धारण करे। तदनन्तर सफेद आलेपन का प्रयोग करे। रजोगुण से रहित होकर हवन करे। इसके बाद शुद्धि संबंधी मन्त्रों का उच्चारण करे। तदनन्तर घी, समिधा और चरु द्वारा क्रमशः हवन करे। उसके बाद रुद्राग्नि को बुझा उसमें से भस्म ग्रहण करे। '**अग्निः**' आदि मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक भस्म को अपने अंगों में धारण करे। भस्मधारण कर व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है। भस्मधारी को 'री' 'तू' आदि अभद्र शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अर्थात् उसकी भाषा नम्र होनी चाहिये। इस प्रकार का पाशुपतव्रत करनेवाला भी मुक्त हो जाता है(लिंग पु. 2/18/45-59)।

(९) पाशुपत योग

इस पुराण में योग की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है– सभी पदार्थों का जीव द्वारा ज्ञान प्राप्त करना योग है। यह परिभाषा 'पतंजलि' की परिभाषा से भिन्न है। चित्त की एकाग्रता ही योग का लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति मूलतः शिव की कृपा से होती है(लिंग पु. 1/8/3)। कृपा की अनुभुति केवल व्यक्ति को ही होती है। ब्रह्मा आदि किसी अन्य के द्वारा यह कृपा आयातित नहीं होती। व्यक्ति के अन्दर स्वतः ही धीरे–धीरे कृपा का उदय होता है। योग उस क्षेत्र की ओर निर्देश करता है जहाँ भगवान् स्वयं उपस्थित होते हैं। उस क्षेत्र की प्राप्ति का कारण ज्ञान है और ज्ञान शिव की कृपा से होता है(लिंग पु. 1/8/5)। उनकी कृपाप्राप्ति के लिये ही योग का आश्रय लिया जाता है।

इस योग के आठ अंग इस प्रकार हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि। ये आठों अंग पतंजलि ने भी अपने योग–दर्शन में बताये हैं। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, स्तेय एवं अपरिग्रह– ये पाँच यम बताये गये हैं जो नियमों के आधार हैं। लगभग पतंजलि के योगदर्शन के समान ही इन यमों की व्याख्या की गयी है। परन्तु नियमों की संख्या पतंजलि से भिन्न है। ये दस हैं– शौच, इज्या, तप, दान, स्वाध्याय, उपस्थनिग्रह, व्रत, उपवास, मौन तथा स्नान। कुछ लोगों के अनुसार अनीहा, शौच, तुष्टि, तप, जप(शिव मन्त्रों का), ध्यान(शिव का) तथा आसन।

शौच बाह्य एवं आन्तरिक दो प्रकार का होता है। दोनों प्रकार के शौच आवश्यक हैं। बाह्य स्नान के बाद आन्तरीक शुद्धि करनी चाहिये। बगैर आन्तरीक शुद्धि के वह अशुद्ध ही रहता है। आन्तरीक शुद्धि के लिये विराग, भक्ति तथा ज्ञान आवश्यक है। चान्द्रायण आदि व्रतों का विधिपूर्वक पालन तप कहलाता है। ओंकार आदि का त्रिविध(वाचिक, उपांशु एवं मानस) जप स्वाध्याय कहलाता है।

प्राणायाम दो प्रकार का होता है– सगर्भ एवं अगर्भ। जप के साथ होनेवाला प्राणायाम सगर्भ तथा बिना जप के होनेवाला अगर्भ कहलाता है। प्राणायाम के चार लक्ष्य हैं– शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद। शान्ति का अर्थ जन्मजात तथा अर्जित सभी प्रकार के पापों का दमन है। वाणी पर पूर्ण संयम रखना प्रशान्ति है। सर्वदा तथा सर्वत्र प्रकाशित होना दीप्ति है। मन की स्पष्टता प्रसाद कहलाता है। यह चार प्रकार का होता है–ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि और शारीरिक प्राणों की स्पष्टता(5 आंगिक प्राण एवं 5 क्रियाशील प्राण)।

प्राणयाम के द्वारा बुद्धि के दोष जल जाते हैं। प्रत्याहार एवं धारणा के द्वारा सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं पर इस प्रकार का ध्यान करने से कि ये विषतुल्य हैं, व्यक्ति अदैवीय गुणों को नष्ट कर देता है। समाधि के द्वारा बुद्धि की शक्ति को बढ़ाना चाहिये। योगसाधन के लिये उपयुक्त स्थान कौन से हैं? इसे कहाँ करना चाहिये कहाँ नहीं इन सबकी चर्चा इस पुराण के पूर्वभाग के आठवें अध्याय में विस्तार से की गयी है। हमने यहाँपर पतंजलि योग से अन्तर रखनेवाले तत्त्वों का ही संक्षिप्त

वर्णन किया है। बाकी सभी योगांगो का वर्णन पतंजलि के समान ही हैं। इसके अगले अध्याय अर्थात् नौवें में योगमार्ग में आनेवाले विघ्नों का तथा रास्ते में प्राप्त होनेवाली बाधारूप सिद्धियों का वर्णन है।

योगमार्ग की आलस्य, व्याधि, प्रसाद, संशय, अस्थिर मन, अश्रद्धा, भ्रान्ति, दुःख, दौर्मनस्य तथा विषयों में प्रवृत्ति–ये दस बाधाएँ हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धिरूप बाधाएँ इस प्रकार हैं–प्रतिभा, श्रवण, वार्त्ता, दर्शना, आस्वाद, और वेदना (लिंग पु. 9/1–3, 14–16)। पातंजलयोगदर्शन में भी योगमार्ग की बाधाओं का वर्णन लगभग इसी प्रकार का है। उसमें 10 की बजाय नौ बाधाएँ बतायी गयीं हैं। उन्हीं नौ में ये दस बाधायें समाहित हो जाती हैं। इसी प्रकार योग–दर्शन में आठ प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है जबकि यहाँ 6 प्रकार की सिद्धियों (जिनके कई–कई भेद हैं) का वर्णन है। सिद्धियों का वर्णन यहाँ बड़े विस्तार से है जो पतंजलि के योग से विशिष्ट है।

उपरोक्त अष्टांग पाशुपत योग के अतिरिक्त भी अन्य प्रकार के योगों की संक्षिप्त चर्चा हम इस पुराण में पाते हैं। पार्वती के यह पूछे जानेपर कि कितने प्रकार के योग हैं? भगवान् शिव कहते हैं कि ये पाँच प्रकार के होते हैं–मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग तथा महायोग।

ध्यान के साथ मन्त्र के जप का अभ्यास मन्त्रयोग कहलाता है। इसमें 'रेचक' के द्वारा नाड़ियों की शुद्धि की जाती है। इसमें प्राणपर विजय भी पूरी तरह से करना होता है। कुंभक का अभ्यास जो तीनों प्रकार की धारणाओं को प्रकाशित करता है तथा जो विश्व, प्राज्ञ और तैजस को शुद्ध करता है उसे स्पर्शयोग कहते हैं। जब मन्त्र एवं स्पर्शयोग को त्यागकर साधक केवल भगवान् शिव का आश्रय ग्रहण कर लेता है और मन में उड़नेवाले समस्त बाह्य और अंतरंग भावों का संहार करके चित्त को पूर्णरूप से शुद्ध कर लेता है, तब वह भाव–योग कहा जाता है। अभावयोग में इस सम्पूर्ण स्थावर–जंगम जगत् का सर्वथा शून्य, निराभास तथा भेदाभेद से रहित रूप से चिन्तन किया जाता है। इसके द्वारा संसार के विभिन्न पदार्थ दृष्टि से विलीन हो जाते हैं और साधक निर्वाण का पथिक बन जाता है। ऐसा ध्यान जिसमें रूप से शून्य, केवल, शुद्ध, स्वच्छन्द, अनिर्देश्य, सदा आलोकित रहनेवाला, सर्वत्र स्वयंवेद्य तत्त्व भासित होता है उसे महायोग कहते हैं। जब नित्य प्रकाशमान् शिवस्वरूप आत्मा अपने शुद्ध विकल्पहीनरूप में भासित होने लगती है तो उसे महायोग कहते है (लिंग पु. 2/55/9–17)।

पाँचों प्रकार के उपरोक्त योग अणिमा आदि सिद्धियों को प्रदान करने के साथ पूर्ण ज्ञान को भी जाग्रत करते हैं। पूर्ण ज्ञान के जाग्रत हो जानेपर मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

(10) शिवसंबंधी स्तोत्र

इस पुराण में शिवसंबंधी अनेकों उपयोगी स्तोत्र हैं जिनमें से दो सहस्त्रनाम स्तोत्र भी हैं। सहस्त्रनामों के अतिरिक्त अन्य जो स्तोत्र हैं उनकी भी बड़ी महिमा बतायी गयी है। जिज्ञासु पाठकों के लिये हम उनमें से कुछ के सन्दर्भ यहाँ प्रस्तुत करेंगे। वे इसके सहारे मूल ग्रन्थ में उन्हें आसानी

से ढूँढ़ सकेंगे।

जब ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष अग्निमयलिंग प्रकट हुआ था तो उस समय विष्णु ने जो स्तुति की थी वह लिंग पुराण(1/18/1-39) में पायी जाती है। इसके जप और पाठ से व्यक्ति पापमुक्त हो ब्रह्मलोक को जाता है। एक बार पुनः ब्रह्मा एवं विष्णु के बीच श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर विवाद हुआ था उस समय विष्णु भगवान् एवं ब्रह्मा ने वहाँ प्रकट हुए शिव की स्तुति की थी। उसका सन्दर्भ है-लिं. पु.(1/21/2-88)। इसके पाठ से दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। शिव की परास्तुति(लिं. पु. 1/32/1-16) के पाठ से शिव के गणों का अध्यक्ष बना जा सकता है। नृसिंह द्वारा भगवान् शिव की 108 नामों द्वारा की स्तुति(लिं. पु. 1/96/76-94) के पाठ अथवा श्रवण से रुद्रत्व को प्राप्त किया जा सकता है। इन्द्रादि देवगण द्वारा की शिव की स्तुति(लिं. पु. 1/104/7-28) के पाठ से उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। ब्रह्माजी के पुत्र तण्डि द्वारा प्रस्तुत शिव सहस्त्रनाम(लिं. पु. 1/65/54-168), जो मूलरूप से ब्रह्माजी द्वारा रचित था, के पाठ से एक हजार अश्वमेध यज्ञ का फल तथा गणेश्वर का पद प्राप्त होता है। इस सहस्त्रनाम को त्रिकाल(मंदिर अथवा पवित्र स्थल में) पढ़ने तथा शिव की पूजा करने से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। एक बात यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि इस सहस्त्रनाम स्तोत्र में एक हजार से कम नाम बैठते हैं परन्तु अगर हम 'मतः'(जो 61, 75, 87 वें श्लोक में आते हैं) आदि को व्यक्तिवाचक नाम मान लें तो संख्या पूरी हो सकती है। दूसरी बात यह है कि इसमें बहुत से नामों जैसे नीलः(श्लोक 105, 116), विष्णु(श्लोक 126, 162), जटी(श्लोक 55, 81), बलः(श्लोक 99, 122), धाता(श्लोक 126, 141), गुहावासी(श्लोक 131, 138) आदि की पुनरावृत्ति है। 'शिवतोषिनी', जो लिंग पुराण की टीका है, समान नामों की अलग-अलग ढंग से व्याख्या करने का सुझाव देती है। महाभारत के अनुशासनपर्व(अध्याय 17, श्लोक 31-153) में वर्णित सहस्त्रनाम तथा इस सहस्त्रनाम में मामूली अन्तर है। दूसरे शब्दों में इनमें काफी समानता है। इस पुस्तक में महाभारतवाला सहस्त्रनाम अन्यत्र दिया गया है। पाठक उसे वहाँ देख लें।

इसी पुराण में एक और सहस्त्रनाम भी दिया गया है जो भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र की प्राप्ति के लिये प्रयोग किया था(लिंग पु. 1/98/27-159)। भगवान् विष्णु एक हजार नामों को क्रमशः बोलते जाते तथा एक-एक कमल का फूल शिवजी को चढ़ाते जाते थे। अन्त में शिवजी ने परीक्षा के बहाने एक फूल कम कर दिया। विष्णु ने, जिनके नेत्र कमल के समान थे, उस कमल के बदले अपनी आँख को भेंट कर दिया। इसपर शिवजी ने प्रसन्न हो उन्हें अपनी भक्ति, देव एवं असुरों द्वारा पूज्य होने का वरदान तथा सुदर्शन चक्र प्रदान किया। इन हजार नामों के जप तथा इस सहस्त्रनाम द्वारा घी आदि द्वारा अभिषेक करने पर अश्वमेध यज्ञों का फल पाकर व्यक्ति सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। यह सहस्त्रनाम शिवपुराण में वर्णित(शि. पु. कोटिरुद्रसंहिता अध्याय 35/2-132)

सहस्त्रनाम का ही थोड़ा परिवर्तित रूप है।[1] शिवपुराणवाला सहस्त्रनाम भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

इस सहस्त्रनाम के सन्दर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि इसमें कुल नामों की सख्या एकहजार न होकर 1116 है। 'शिवतोषिनी' कई नामों को नाम न मानकर अन्य नामों का विशेषण मानती है(इस प्रकार नामों की सख्या घटकर एक हजार हो जाती है)। उदाहरण के लिये 'भवाय शिवाय नमः' में 'भवाय' को 'शिवाय' का विशेषण मान लेने पर उसे शिव के नामों में परिगणित नहीं किया जा सकता।

(11) प्रमुख शैवतीर्थ

इस पुराण में कई शैवतीर्थों का वर्णन मिलता है। दधीचि एवं क्षुव के विवाद का अन्तिम निर्णय(अर्थात् क्षुव की पराजय एवं दधीचि की महानता की स्वीकृति) जिस स्थल पर हुआ था, वह स्थान स्थाणवीश्वर नाम से जाना जाता है। यह स्थल वर्त्तमान कुरुक्षेत्र शहर का ही अंग है। वहाँ जाकर व्यक्ति शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है(लिंग पु. 1/36/77)। रुद्रावतार, नरावतार, श्रीपर्वत, गोकर्ण, वाराणसी, अविमुक्तक्षेत्र, केदार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, प्रभास, पुष्कर, अवन्ति तथा अमरेश्वर आदि तीर्थों में मरने पर शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है(लिंग पु. 1/77/37-45)। पंचनद में जाकर स्नान कर जो जप्येश्वर महादेव की पूजा करता है, वह भी शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है(लिंग पु. 1/43/48)।

वाराणसी के अविमुक्तक्षेत्र को सबसे बड़ा तीर्थ स्वीकार करते हुए कहा गया है कि मृत्यु के आसन्न(निकट) होनेपर व्यक्ति को अविमुक्तक्षेत्र में जाकर प्राणों का विसर्जन करना चाहिये। ऐसा करने से उसे मुक्ति मिल जायगी। श्रीपर्वत पर भी शरीर छोड़ने से शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है(लिंग पु. 1/91/73-76)। अविमुक्त को प्रयाग से भी श्रेष्ठ बताया गया है(लिंग पु. 1/92/48)। इस क्षेत्र में बहुत से योगी एवं पुण्य आत्माएँ प्रच्छन्न वेश में शिव की उपासना करते रहते हैं(लिंग पु. 1/92/62)। यहाँपर अनेक सिद्धों, देवों तथा योगियों ने शिवलिंग स्थापित कर रक्खा है। जबसे संसार की सृष्टि हुई है, यह स्थान शिव द्वारा कभी त्यागा नहीं गया है। इसीलिये इसे अविमुक्त कहते हैं(लिंग पु. 1/92/104)। अविमुक्तेश्वरलिंग के दर्शन से तत्काल ही पापों का नाश हो जाता है तथा जीव को बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। पवित्र पर्वों के अवसर पर केदार, महालय, मध्यमेश्वर, पशुपतेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, गोकर्ण, द्रुमचन्द्रेश्वर, भद्रेश्वर, स्थानेश्वर, कालेश्वर, ओंकार, अमरेश, महाकाल आदि धरती के 68 पवित्र तीर्थ वाराणसी में चले आते हैं(लिंग पु. 1/92/134-139)।

'अवि' शब्द वेदों में पापों के लिये प्रयुक्त होता है। अतः जहाँपर पाप नहीं हों उसे अविमुक्त कहेंगे। इस क्षेत्र को अविमुक्त कहने का यही रहस्य है(लिंग पु. 1/92/143)।

1. इस सहस्त्रनाम से मिलता-जुलता सहस्त्रनाम सूर्य पुराण(41/12-140) में भी पाया जाता है।

अविशब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः।
तेन मुक्तं मया जुष्टमविमुक्तमतोच्यते।।

वाराणसी के अविमुक्तेश्वर की महिमा के प्रसंग में निम्नलिखित घटना का उल्लेख प्रासांगिक होगा। ब्राह्मणों के शाप से जब भगवान् विष्णु का क्षीर-सागर सूख गया अथवा अपेय हो गया तो शाप के प्रायश्चित्त तथा क्षीरसमुद्र को पुनः पूर्व अवस्था में लाने के लिये भगवान् विष्णु ने वाराणसी जाकर शिवजी का दुग्ध से भक्तिपूर्वक अभिषेक किया। ब्रह्मा एवं ऋषियों के साथ भगवान् विष्णु ने ज्योंही दुग्ध को शिवजी पर डाला, वह दूध उनके संपर्क में आते ही अमृतमय हो गया जिससे क्षीर सागर पुनः भर गया। तदनन्तर विष्णुजी ने पुनः उसे अपना निवास स्थान बना लिया।

अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्यांजनार्दनः।
क्षीरेण चाऽभिषिच्येशं देवदवंत्रियम्बकम्।।
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै।
निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः।।
सेचयित्वाऽथ भगवान् ब्रह्मणा मुनिभिः समम्।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चाऽऽत्मनः प्रभुः।। (लिंग पु. 1/29/30-32)

वाराणसी में मरनेवाले पापी इसी जन्म में मुक्त हो जाते हैं। अन्यत्र किआ हुया पाप वाराणसी में समाप्त हो जाता है परन्तु यहाँपर किया गया पाप पापी को पिशाच बना देता है और उसे नरक ले जाता है।

पापिनां यत्र मुक्तिः स्यान्मृतानामेकजन्मना।
अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यां व्यपोहति।।
वाराणस्यांकृतंपापंपैशाच्यनरकावहम्। (लिंग पु. 1/103/75-76)

उस नरक को भोगने के बाद वह मुक्त हो जाता है। वाराणसी में स्थापित अन्यान्य लिंगों जैसे व्याघ्रेश्वर, शैलेश्वर, संगमेश्वर, शुक्रेश्वर आदि का भी वर्णन इस पुराण में किया गया है। इसमें रामेश्वर, मल्लिकार्जुन, रुचिकेश्वर आदि तीर्थों का भी संक्षिप्त उल्लेख है।

(12) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें

शिवोपासना संबंधी कुछ बातें जिनका उल्लेख ऊपर नहीं हो सका है उनका यहाँपर संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

अघोर मन्त्र[1] की महिमा के बारे में कहा गया है कि इसे एक लाख बार जपने से ब्रह्महत्या के पाप, पचास हजार जप से वाचिक पाप, पच्चीस हजार जप से मानसिक पाप दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य प्रकार के पापों से मुक्ति के लिये इस मन्त्र की भिन्न-भिन्न संख्या का जप किया

1. अघोर मन्त्र इस प्रकार है- "ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः"

जाता है। इन संख्याओं तथा उसके साथ अन्य किये जानेवाले कर्मों का उल्लेख भी इस पुराण में विस्तार के साथ मिलता है (लिंग पु. 1/15/7-32)। अघोर मन्त्र की सिद्धिसंबंधी निर्देश तथा उसका प्रयोग बिमारी वगैरह में किस प्रकार किया जाय, इनका भी उल्लेख इसमें (लिंग पु. उत्तरार्द्ध अध्याय 49 और 50) किया गया है। इस मन्त्र को सिद्ध करनेवाले व्यक्ति द्वारा ब्राह्मण, गौ एवं स्त्री को नहीं सताया जाना चाहिये।

तस्मादघोरसिद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्नैवबाधयेत्।।
स्त्रीणामपि विशेषेण गवामपिन कारयेत्। (लिंग पु. 2/50/8-9)

मृत्यु से बचने के लिये रुद्राध्याय के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए एक लाख घी की आहुति उचित क्रम से देवें। होम के लिये तिल, घी, कमल, घीमिश्रित दूर्वा, गाय का दूध, शहद तथा चरु जिसमें घी अथवा दूधमात्र हो, का प्रयोग करें (लिंग पु. 2/53/2-4)।

त्र्यम्बक (मृत्युंजय) मन्त्र[1] सर्वश्रेष्ठ वैदिक मन्त्र है, इसलिये इसके द्वारा शिव की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से अग्निष्टोम यज्ञ से आठ गुना फल प्राप्त होता है (लिंग पु. 2/54/17-18)। शिव जैसा दयालु कोई नहीं है; उनकी पूजा एवं प्रसन्नता दोनों ही सरल है। उनका यह त्र्यम्बक मन्त्र भी उसी प्रकार का है। अत: सब कुछ छोड़कर इस मन्त्र का जप करें। ऐसा करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। इसके द्वारा मृत्युपर भी नियन्त्रण पाया जा सकता है (लिंग पु. 2/54/31-34)।

त्रियम्बकसमोनास्तिदेवोवाघृणयान्वितः।
प्रसादशीलःप्रीतश्चतथामन्त्रोऽपिसुव्रताः!।।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य त्रियम्बकमुमापतिम्।
त्रियम्बकेन मन्त्रेणपूजयेत्सुसमाहितः।।
सर्वावस्थांगतोवाऽपिमुक्तोऽयंसर्वपातकैः। (लिंग पु. 2/54/32-34)

इस पुराण के पूर्वार्द्ध के 83 वें और 84 वें अध्याय में शिवसंबंधी व्रतों की चर्चा है। इन व्रतों में हर महीने में की जानेवाली महेश्वर की विशेष पूजाओं का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उमा-महेश्वर-व्रत तथा महामेरुव्रत की विशेष चर्चा की गयी है। ये सभी व्रत पापनाशक, रुद्रलोक की प्राप्ति करानेवाले तथा मनोवांछित फल देनेवाले हैं। सभी प्रकार के व्रतों के मुख्य अंग हैं-क्षमा, सत्य, दान, शौच तथा इन्द्रियनिग्रह-इनके साथ पूजा करना।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्व व्रतेष्वयं धर्म्मः सामान्योरुद्रपूजनम्।। (लिंग पु. 1/84/22)

पुन: सभी व्रतों का समापन पंचाक्षर मन्त्र के जप से करना चाहिये।

जपादेव न सन्देहोव्रतानांवै विशेषतः।

1. मृत्युंजय मन्त्र की जपविधि इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है।

समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पञ्चाक्षरींशुभाम्।। (लिंग पु. 1/85/2)

इस पुराण में शिव के नाना प्रकार के भक्तों – जैसे दिगम्बर रहनेवाले, श्मशान सेवी तथा यज्ञ, व्रत और भगवान् की लीलाओं का ध्यान करनेवाले – की चर्चा तथा महत्ता का वर्णन किया गया है। साथ में भस्म का भी माहात्म्य बतलाया गया है। शिव के सभी प्रकार के भक्तों में समभाव रखना चाहिये। उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

भगवान् शिव देवदारु वन के ऋषियों को उपदेश दे रहे हैं कि मेरे परायण(भक्त) साधु जो ब्रह्म की चर्चा करते हैं, पर बच्चों या पागलों की तरह व्यवहार करते हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। वे भक्त जो विभूति अथवा भस्म को धारण करते तथा भस्मसेवन कर अपने पापों को धोते, जो ध्यानरत रहते तथा शास्त्रविहित कर्म करते, जो इन्द्रियनिग्रही हैं, जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं तथा जो शरीर, मन एवं वाणी पर संयम रखकर उपासना करते हैं, वे रुद्रलोक को चले जाते हैं।(लिंग पु. 1/33/5 – 8)

उपरोक्त प्रकार के भक्तों की न तो निन्दा करनी चाहिये और न ही उन्हें अप्रिय वचन बोलना चाहिये। जो मूर्ख ऐसे भक्तों की निन्दा करता है वह स्वयं भगवान् की निन्दा करता है। और जो उनकी पूजा करता है वह शंकर की ही पूजा करता है।

न हसेन्नाऽप्रियं ब्रूयादमुत्रेहहितार्थवान्।
यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निन्दति।।
यस्त्वेतान् पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्। (लिंग पु. 1/33/10 – 11)

निन्दा इसलिये भी नहीं करनी चाहिये कि विश्व के कल्याणार्थ भगवान् शिव स्वयं प्रत्येक युग में सर्वांग में भस्म लगाकर महान् योगियों की तरह लीला करते हैं। अतः उस वेश का सम्मान करने तथा इस खतरे से बचने के लिये कि कहीं वे स्वयं रुद्रदेव ही तो नहीं हैं, हमें ऐसे भक्तों या योगियों का निरादर नहीं करना चाहिये। देवदारु वन के ऋषि इसी कारण से धोखा खा गये थे।

नग्न साधुओं की आलोचना को ध्यान में रखकर भगवान् शिव कहते हैं कि देवता तथा ऋषि सभी नग्न ही पैदा होते हैं तथा अन्य लोग भी नग्न ही पैदा होते हैं। व्यक्ति सिल्क के कपड़े को धारण करने के बाद भी नग्न ही है अगर उसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में नहीं रक्खा है। अगर किसी व्यक्ति की इन्द्रियाँ संयम में हैं तो वह अच्छी तरह से ढका है क्योंकि नग्नता का कारण वस्त्र नहीं है। क्षमा, धृति, अहिंसा, वैराग्य, मान एवं अपमान में सम रहना – ये शरीर के उत्तम आवरण हैं(न कि वस्त्र)।

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्येमानवा लोकेसर्वेजायन्त्यवाससः।।
इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनाऽपि सम्वृतः।

तैरेव संवृतैर्गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्।।
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यञ्चैव सर्वशः।
तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम्।। (लिंग पु. 1/34/13-15)

आगे दो प्रकार के भक्तों(उत्तरपथ तथा दक्षिणपथवाले) की चर्चा करते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि जो लोग यज्ञ तथा व्रत करते, भगवान् की लीलाओं का भक्ति-भाव से ध्यान करते वे उत्तरपथ से जाकर अमरत्व को प्राप्त करते हैं। परन्तु जो श्मशान में रहते तथा दक्षिणपथ का अनुसरण करते वे अणिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियों को प्राप्त करते हैं तथा(अन्त में) अमरत्व को भी(लिंग पु. 1/34/19-21)।

शिवभक्तों की महिमा बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि सभी प्रकार के भस्मधारी शिवभक्तों, चाहे वे जटाधारी हों या मुण्डित या नग्न, की शिव के समान ही मन, वाणी तथा कर्म से पूजा करनी चाहिये (लिंग पु. 1/34/30-31)।

शिवभक्तों की महिमा को बताते हुए एक स्थल पर मार्कण्डेयजी कह रहे हैं कि अन्य प्रकार के हजारों भक्तों से बढ़कर विष्णु का भक्त है इसी प्रकार रुद्र का भक्त हजारों विष्णु भक्तों से बढ़कर है तथा रुद्रभक्तों से बढ़कर कोई नहीं है।[1] इसीलिये सभी प्रकार से वैष्णव एवं रुद्र भक्तों की पूजा करनी चाहिये ताकि अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति हो सके। अर्थात् शिव या विष्णु के भक्तों की पूजा से अर्थादि चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।

अन्य भक्तसहस्रेभ्योविष्णुभक्तोविशिष्यते।
विष्णुभक्तसहस्रेभ्योरुद्रभक्तो विशिष्यते।
रुद्र भक्तात्परतरो नास्तिलोके न संशयः।।
तस्मात्तु वैष्णवञ्चापि रुद्रभक्तमथापि वा।
पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थ मुक्तये।। (लिंग पु. 2/4/20-21)

भगवान् शिव भस्म-माहात्म्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि चूँकि मैं अग्निरूप हूँ इसलिये भस्म अग्नि के साथ मेरा भी वीर्य(सार अंश) है। इसी कारण मैं इसे धारण करता हूँ। भस्म का

1. यहाँ रुद्र का अर्थ परम ब्रह्म निष्कल सदाशिव है जिनसे-ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवों की उत्पत्ति होती है। अतः उपरोक्त कथन को साम्प्रदायिक अथवा विष्णुनिन्दापरक नहीं समझना चाहिये। यहाँपर विष्णु का तात्पर्य अनेक ब्रह्माण्डों में स्थित अनेक विष्णु देवों से है। ये देवतारूप विष्णु निष्कल शिव से पृथक देव हैं। परन्तु अगर हम विष्णु का अर्थ महाविष्णु जो परम ब्रह्म, निर्गुण तथा सबकी उत्पत्ति का आधार है लगायें तो उस अवस्था में शिव एवं विष्णु में कोई भेद नहीं रह जाता, एक ही तत्त्व के विष्णु एवं शिव दो भिन्न-भिन्न नाममात्र होंगे। तात्त्विक दृष्टि से उनमें अभिन्नता हो जायगी। ऐसी हालत में विष्णु का भक्त शिव का तथा शिव का भक्त विष्णु का भक्त कहा जायगा। अतः उपरोक्त श्लोकों की सार्थकता तभी है जब हम विष्णु का अर्थ सृष्टि-विशेष का पालक देवता लगायें और रुद्र का अर्थ(अनेकों रुद्र में से कोई एक नहीं अपितु) निष्कल सदाशिव लगायें।

अर्थ 'भासित होना' या 'प्रकाशित होना' है। दूसरा अर्थ 'जो पहुँचाने का कारण हो' तथा तीसरा अर्थ 'भक्षण करना' है। अतः भस्म(ज्ञान को) प्रकाशित करता है, (शिवतक) पहुँचाने का कारण है तथा पापों का भक्षक है। (लिंग पु. 1/34/4-5)

भस्म के प्रयोग से व्यक्ति को अनेक प्रकार के अशुभों से सुरक्षा मिलती है। भस्म के प्रयोग से जिसकी आत्मा पवित्र हो चुकी है, जिसने क्रोध एवं इन्द्रियों को जीत लिया है, वह कभी भी संसार में नहीं लौटता तथा वह मेरे लोक को प्राप्त होता है।(लिंग पु. 1/34/9-10)

भस्म की महिमा बताते हुए भगवान् शिव आगे कहते हैं कि जो भस्मस्नान करता है तथा शिव का मानसिक चिन्तन करता है, उसके पाप भस्म हो जाते हैं। जो यत्नपूर्वक पवित्र भस्म से प्रतिदिन तीन बार स्नान करता है, वह गणपति के पद को प्राप्त कर लेता है(लिंग पु. 1/34/16-18)।

एक अन्य स्थलपर भस्म के बारे में कहा गया है कि अग्निहोत्र या हवनकुण्ड से भस्म को **'अग्नि.'**[1] आदि मन्त्रों को पढ़ते हुए लेकर अंगों में लेप करनेवाला सभी प्रकार के महापातकों से छूट जाता है। अग्नि का वीर्य भस्म है अतः भस्मधारी भी वीर्यवान् हो जाता है। भस्मस्नान करनेवाला ब्राह्मण, जो इन्द्रियों को जीत चुका है, पापों से मुक्त हो शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को सभी प्रकार से भस्म के द्वारा अपने शरीर को पवित्र कर लेना चाहिये तथा उसे 'री' या 'तु' जैसे अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अर्थात् उसे वाणी में संयम बरतना चाहिये। ऐसा करने से वह पापों से मुक्त हो जाता है। भगवान् शिव कहते हैं कि ऐसा भक्त हमारे पुत्र गणेश के तुल्य हो जाता है। आगे कहा गया है कि जो गृहस्थ वैदिक ज्ञान से शून्य तथा त्रिपुण्ड्र से रहित है वह नरक को जाता है। सभी प्रकार के पवित्र कार्यों में त्रिपुण्ड्र का अवश्य प्रयोग करना चाहिये(लिंग पु. 2/18/55-63)।

इन्द्रदेव शिलाद(नन्दी के पिता) को कलियुग के बारे में बताते हुए कहते हैं कि इस युग में ब्राह्मण भी वेद एवं धार्मिक कर्मों की निन्दा करेंगे। इस युग में नीललोहित महादेव शंकर धर्म की प्रतिष्ठा के लिये विचित्र अथवा अद्भूत रूप में प्रकट होते हैं। विप्र लोग जिस किसी भी प्रकार से उनकी शरण लेतें हैं वे कलि के दोषों से रहित हो परमपद को प्राप्त करते हैं।

निन्दन्ति वेदविद्याश्चद्विजाः कर्माणि वै कलौ।
कलौ देवोमहादेवः शङ्करोनीललोहितः।।
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शङ्करम्।।
कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्। (लिंग पु. 1/40/20-22)

वहीं पर आगे कहा गया है कि कलि में एक दिन के धर्माचरण से जो फल प्राप्त होता है

1. भस्म लेने एवं लगाने आदि के 'अग्नि.' आदि मन्त्र इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखे गये हैं।

वह द्वापर में एक माह तथा त्रेता में एक साल के धर्माचरण से प्राप्त होता है।

त्रेतायांवार्षिकोधर्मोद्वापरेमासिकः स्मृतः।
यथा क्लेशंचरन् प्राज्ञस्तदहनाप्राप्नुतेकलौ। (लिंग पु. 1/40/47)

अगर हम उपरोक्त दोनों कथनों पर विचार करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि हमें(इस कलि में)भगवान् शिव की शीघ्र ही उपासना शुरू कर देनी चाहिये क्योंकि कलि में व्यक्ति अल्पआयुवाले होते हैं।(लिं पु. 1/40/45)

त्रिदेवों का आपसी संबंध

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम तीनों देवों की तात्त्विक एकता तथा लीलावश प्रकट होनेवाले उनके व्यावहारिक रूपों के आपसी संबंधों की चर्चा करेंगे। परम तत्त्व भगवान् सदाशिव जो अद्वैत नित्य एवं शुद्ध है, सृष्टि रचना की इच्छा होनेपर(माया या प्रकृति का स्वेच्छा से आश्रय लेकर) अपने को तीन देवों के रूप में प्रकट करते हैं। इन तीनों रूपों में एक सृष्टिकर्त्ता, दूसरा पालककर्त्ता तथा तीसरा संहारकर्त्ता है। पहला रजोगुण प्रधान, दूसरा सतोगुण तथा तीसरा तमोगुण प्रधान होता है। इस तथ्य का इस पुराण में अनेक जगहों पर उल्लेख है जैसे-1/1/22; 1/3/6; 1/3/10; 1/3/37-38; 1/6/30; 1/19/12; 1/31/9; 1/70/90-91; 2/16/19।

तमसाकालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वेमहेश्वरम्।। (लिंग पु. 1/6/30)
त्रिधा भिन्नोह्यहंविष्णो! ब्रह्मविष्णुभवाख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।। (लिंग पु. 1/19/12)
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्वं विष्णुः प्रकाशकम्।
मूर्त्तिरेका स्थिता चाऽस्य मूर्त्तयः परिकीर्त्तिताः।। (लिंग पु. 1/31/9)
तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः।
भवविष्णुविरिञ्चाख्यमवस्थात्रयमीशितुः।। (लिंग पु. 2/16/19)

अर्थात्-जब वह तमस से युक्त होता है तो कालरुद्र, रजसयुक्त होता है तो ब्रह्मा, सत्त्वयुक्त होनेपर सर्वव्यापी विष्णु तथा निर्गुण होनेपर महेश्वर कहा जाता है।

भगवान् शिव विष्णु से कहते हैं कि- हे विष्णु! मैं निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा तथा लय के हेतु ब्रह्मा, विष्णु और भव(रुद्र) नामवाले इन तीनों रूपों में अपने को विभक्त करता हूँ।

तमस अग्नि(रुद्र), रजस् ब्रह्मा तथा सत्त्व विष्णु है। यद्यपि मूल में स्थित सत्ता एक ही है तथापि ये तीनों उसके भिन्न-भिन्न रूप कहे जाते हैं।

ईश(भगवान् शिव) की तीन अवस्थायें जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं। ये तीनों अवस्थायें भव(रुद्र), विष्णु तथा ब्रह्मा कही जाती हैं।

उपरोक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीनों तात्त्विकरूप से एक ही हैं। अन्तर केवल गुणों के आधिक्य का है। ये गुण केवल जगत् के लीला-व्यापार में ही अन्तर डालते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से ये तीनों देव एक ही हैं।

अन्य संदर्भ, जहाँ भगवान् शिव को ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र अथवा उनका जनक कहा गया है, इस प्रकार हैं-1/71/96-97; 2/18/1; 2/18/41-42; 2/19/41; 1/96/108; इत्यादि।

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने।।
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।
शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नमः।। (लिंग पु. 1/71/96-97)

ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रचन्द्रादि वयञ्चप्रमुखाःसुराः।
सुरासुराःसम्प्रसूतास्त्वत्तःसर्वेमहेश्वरः।। (लिंग पु. 1/96/108)

स एव भगवान्रुद्रो ब्रह्मविष्णु महेश्वराः। (लिंग पु. 2/18/1)

एकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम्।
परात्परतरं वापि परात्परतरं ध्रुवम्।।
ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदाशिवम्। (लिंग पु. 2/18/41-42)

नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणेसूर्य्यमूर्त्तये। (लिंग पु. 2/19/41)

अर्थात्-(भगवान् विष्णु शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि) परमात्मा, नारायण, शर्व(रुद्र), ब्रह्मा तथा ब्रह्मरूप महेश्वर आपको प्रणाम है। शाश्वत, अनन्त तथा अव्यक्तरूप देव आपको नमस्कार है।

(देवगण भगवान् शिव के प्रति कहते हैं) कि हे महेश्वर! हम ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम आदि प्रमुख देव और अन्य सभी देव एवं असुर तुमसे ही पैदा हुए हैं।

(देवगण कहते हैं कि) भगवान् रुद्र ही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर हैं। उस एक को ही रुद्र, शाश्वत परमेश्वर, परात्पर, ध्रुव एवं परात्परतर(सर्वश्रेष्ठ सत्ता) कहा जाता है। वही सदाशिव ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि(रुद्र) और वायु आदि का जनक है।

(ऋषि लोग शिव की स्तुति में कहते हैं कि) भगवान् शिव, जो ईश्वर, कपर्दि, रुद्र तथा विष्णु हैं, को नमस्कार है। तुम सूर्यमूर्तिधारी ब्रह्म को नमस्कार है।

ऊपर के ये सब सन्दर्भ भी तीनों देवों के घनिष्ठ संबंध तथा उनकी अनन्यता को सिद्ध करते हैं। यही कारण है कि निष्कल शिव की लिंगरूप में जो पूजा की जाती है उसमें लिंग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु तथा ऊपरी भाग में शिव की स्थिति स्वीकार की जाती है।

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः। (लिंग पु. 1/74/19-20)

अर्थात्-लिंग के मूल में ब्रह्मा, तीनों लोकों के स्वामी विष्णु मध्य में तथा ऊपर महादेव रुद्र सदाशिव स्थित हैं जिन्हें प्रणव कहा जाता है।

जब ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ था तब उनके समक्ष शिवजी अग्निमयलिंग के रूप में प्रकट हुए थे। उसी प्रसंग में भगवान् शिव ब्रह्मा से कहते है कि तुम दोनों पहले मेरे दाहिनें एवं वाम भाग से क्रमशः पैदा हुए हो(लिंग पु. 1/19/2-3)। इसी प्रकार अन्य प्रसगों में भी इस बात का उल्लेख है(जैसे 1/102/44 इत्यादि)। इन सब सन्दर्भों से भी यही स्पष्ट होता है कि एकमात्र तत्त्व शिव ही ब्रह्मा एवं विष्णु के रूप में प्रकट होता है।

कुछ सन्दर्भों में विष्णु को प्रकृति कहा गया है। प्रकृति एवं पुरुष, महेश्वर एवं माया दोनों में अद्वैत अथवा अभेद संबंध है। माया महेश्वर की शक्ति है और वह महेश्वर के अस्तित्व में ही ओत-प्रोत है। इसी रहस्य को अर्द्धनारी के रूप में शिव को चित्रित कर दर्शाया गया है। विष्णु को प्रकृति एवं शिव को पुरुष माननेवाले सन्दर्भ हैं- 1/96/40 तथा 1/103/39-40 इत्यादि। नृसिंह की मृत्यु के पश्चात् वीरभद्रजी कहते हैं कि वे(नृसिंहरूप विष्णु) शिव में लीन हो गये।

यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरं क्षीरे घृतं घृते।।
एकएव तदा विष्णुः शिवलीनो न चान्यथा। (लिंग पु. 1/96/111-112)

अर्थात्- (वीरभद्र देवताओं से कहते हैं कि) जैसे जल जल में, दूध दूध में, घी घी में मिल कर एक हो जाते हैं उसी प्रकार विष्णु भी शिव में मिल(कर एकाकार हो) गये।

इन सब सन्दर्भों, कि शिव पुरुष एवं विष्णु प्रकृति हैं तथा विष्णु शिव में लीन हो जाते हैं, से भी विष्णु एवं शिव की एकता सिद्ध होती है।

एक अन्य सन्दर्भ में भगवान् विष्णु के प्रकृति होने के कारण ही पार्वती का भाई बताया गया है। क्योंकि विष्णु की तरह पार्वती भी प्रकृति की अपर अभिव्यक्ति हैं। भाई होने का एक और भी कारण बताया गया है कि शिव के बाम भाग से विष्णु का जन्म हुआ है तथा (सृष्टि के आदि में विष्णु के पैदा होने के बाद) भवानी का भी। ब्रह्माजी के कहने से ही शिवजी ने अपने को स्त्री एवं पुरुष दो रूपों में विभक्त कर लिया था। जिस स्त्री को बाम भाग से प्रकट किया था वह स्त्री श्रद्धा थी। वही दक्ष के घर जन्म लेकर सती तथा हिमालय के यहाँ जन्म लेकर पार्वती कहलायी। पार्वती को छोटी बहन मानकर विष्णु ने उसे शिव को दिया था। इस कथा के लिये देखें-लिंग पु. पूर्वभाग अध्याय 99-103। इस कथा में अन्य बातों के अलावा विष्णु को प्रकृति स्वीकार किया गया है। इसी कारण उन्हें शिव से अभिन्न मानना चाहिये।

सृष्टि में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं तथा इन ब्रह्माण्डों में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश विद्यमान हैं। इसी प्रकार अनेक कल्पों में भी पैदा होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भिन्न-भिन्न होते

हैं। इस प्रकार अनेकों ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र अस्तित्व में आते-जाते रहते हैं। परन्तु सदाशिव एक ही रहता है जिसकी प्रेरणा से अनेक ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रों का जन्म होता रहता है। इन्हीं ब्रह्माओं आदि के सन्दर्भ में कहा गया है कि अलग-अलग कल्पों में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र एक दूसरे से पैदा होते रहते हैं। किसी कल्प विशेष में विष्णु ने अपने नाभी कमल से ब्रह्मा को पैदा किया, किसी अन्य कल्प में ब्रह्मा ने विष्णु को, किसी अन्य कल्प में ब्रह्मा ने रुद्र को तो कभी रुद्र ने ब्रह्मा को पैदा किया(लिंग पु. 1/41/15-18 आदि)।

पुनः लिं. पु.(1/37/9) में कहा गया है कि ब्रह्माजी उमा और महेश्वर से पैदा हुए हैं। इसी अध्याय में आगे बताया गया है कि ब्रह्मा ने शिव से वरदान पाकर विष्णु को अपने भौहों के मध्य से पैदा किया(1/37/33-35)। इसी प्रकार इससे पहले पद्म कल्प में ब्रह्मा विष्णु के नाभीकमल से पैदा हुए थे(1/103/44 तथा 1/अध्याय 20)। इसी प्रकार सृष्टिकार्य के लिये शिवजी ब्रह्मा के ललाट से पैदा हुए थे(1/96/42 आदि)। अनेक प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र एक दूसरे से अलग-अलग कल्पों में अलग-अलग प्रयोजनों या कारणों से पैदा होते रहते हैं। परन्तु सभी के पीछे महेश्वर का अनुग्रह ही होता है जो अपनी माया से लीलावश अनेकों ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रों की सर्जना करते हैं जिसका उद्देश्य सृष्टिव्यापार का नियमन करना होता है।

भगवान् शिव के भक्त ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों ही हैं। परन्तु कभी-कभी शिवमाया से मोहित हो जाने के कारण ये दोनों शिव की महिमा के प्रति बेखबर हो जाते हैं। ऐसे-ऐसे अवसरों पर भगवान् शिव प्रकट हो उनके मोह को भंग करते रहे हैं। जैसा ऊपर हमने देखा है कि उन दोनों में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर होनेवाले विवाद को निपटाने के लिये तथा ज्ञानप्रदान करने के लिये शिवजी स्वयं प्रकट होते रहे हैं। अनेक अवसरों पर देवताओं की समस्याओं(त्रिपुरासुर आदि) के हल के लिये भी ब्रह्मा-विष्णु के अनुरोध पर उन्होंने अपनी कृपा या दयालुता दिखलायी है। इस पुराण में बताया गया है कि विष्णु एवं ब्रह्मा ने, जब कभी वरदान माँगने का अवसर आया है, अविचल भक्ति का ही वरदान शिव से माँगा है(1/19/6-7; 1/22/10-11 आदि)। सुदर्शन चक्र की प्राप्ति के निमित्त विष्णुने जो तपस्या की थी उसके परिणामस्वरूप उन्हें न केवल सुदर्शन चक्र मिला अपितु उन्हें भक्ति तथा देव एवं असुरों द्वारा पूज्य होने का भी वरदान मिला।

प्राह चैवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्।।
मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः।
भविष्यसिनसन्देहोमत्प्रसादात्सुरोत्तम।। (लिंग पु. 1/98/182-183)

अर्थात्-महादेवजी भगवान् विष्णु से इस प्रकार बोल-हे देवश्रेष्ठ मेरी कृपा से तुम सदैव मेरे भक्त बने रहोगे और तुम देवता एवं असुर दोनों द्वारा वन्द्य तथा पूज्य होगे, इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिये।

जब भगवान् विष्णु अम्बरीष को वर देने के लिये प्रस्तुत होते हैं तो अम्बरीष(उन्हें आदर्श

भक्त मानते हुए) कहते हैं कि जिस प्रकार आप परमात्मा देवाधिदेव शिव के भक्त हैं उसी प्रकार मुझे भी आप अपना मन, वाणी और कर्म से भक्त बनने का वरदान दीजिये।

वासुदेवपरोनित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः।।
यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः।
तथा भवाम्यहं विष्णो! तव देव! जनार्दन।। (लिंग पु. 2/5/39-40)

भगवान् शिव विष्णु को इतने प्रिय हैं कि उन्होंने उनका वाहन बनने का भी वरदान माँगा था तथा शिवजी ने उन्हें वाहन बनने का वरदान भी दिया था जिसके परिणामस्वरूप वे वृषरूप में उनको वहन करने लगे (लिंग पु. 1/72/173-175)।

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि (1) भगवान् विष्णु शिव के अनन्य एवं आदर्श भक्त हैं तथा (2) उनका लोक एवं परलोक में तथा देव, असुर तथा मानव आदि सबके द्वारा पूजा जाना भगवान् शिव के वरदान का ही प्रभाव है। इस तरह विष्णुजी की लोकप्रियता का रहस्य समझ में आ जाता है।

उपसंहार

शिव पुराण की भाँति लिंग पुराण भी शैवमत की विस्तार से विवेचना करनेवाला पुराण है, जो ईशान कल्प की कथाओं से संबंधित 9185 श्लोकों में प्राप्य है।

इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव को परम ब्रह्म या तत्त्व कहा गया है जिसके निष्कल एवं सकल (निर्गुण एवं सगुण) दो रूप हैं। निष्कल रूप में वे नित्य, शुद्ध, अद्वैत या केवल, मन, वाणी तथा बुद्धि से परे, ॐकारस्वरूप तथा अव्यय आदि हैं। वे ही सृष्टिकार्य के लिये सगुण बनकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि रूपों को धारण करते हैं। वे मायापति हैं, माया या प्रकृति को स्वेच्छापूर्वक धारण कर अपने आप को नाना रूपों में प्रकट करते हैं। समस्त चराचर जगत्-चाहे वर्त्तमान का हो चाहे भूत या भविष्य का हो-उन्हीं का रूप है। उनके सिवा कुछ भी अपने आप में अस्तित्व नहीं रखता। सभी-कुछ शिव के ही कारण है। उन्हें ही शब्दब्रह्म, अव्यक्त, प्रकृति, पुरुष, सभी जीवों का आदिकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरदाता, भोग, मोक्ष, तथा ऐश्वर्यदाता, भक्तवत्सल, दयालु, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ, ज्ञानस्वरूप, पंचमुखी, दस भुजाओंवाला, अर्द्धनारीश्वर, चन्द्रमा, जटा, मृगचर्म, नागहार तथा मुण्डमाला आदि धारण करनेवाला, पिनाक, त्रिशूल, फरसा आदि शस्त्रों को धारण करनेवाला, त्रिपुर, अंधक तथा जालंधर आदि असुरों का वध करनेवाला, योगियों के आदर्श एवं ध्येय, कैलासवासी, त्रिनेत्रधारी, संहारकर्त्ता, सर्वभूतात्मा तथा नीलकण्ठ आदि कहा जाता है।

माया महेश्वर की शक्ति है, वह उन्हीं की इच्छा से सृष्टिकार्य का संपादन करती है। माया एवं महेश्वर एक दूसरे से अवियोज्य हैं।

शिवोपासना से अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। अगर एकबार भी व्यक्ति का मन भगवान् शिव में लग जाय तो उसे रुद्रलोक की प्राप्ति में देर नहीं है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य

एवं ऐश्वर्य शिवकृपा का ही फल होता है। शिवपूजा से सभी प्रकार के पातक नष्ट हो जाते हैं। रुद्र के भक्तों से श्रेष्ठ कोई नहीं है। शिव की भक्ति से विष्णु एवं ब्रह्मा को अपना-अपना पद मिला तथा विष्णु को सुदर्शन चक्र, सर्वपूज्यता एवं श्रेष्ठता का वरदान और(कृष्णावतार में) पुत्र की प्राप्ति हुई। दधीचि को अवध्यता का, श्वेत को मृत्युञ्जय होने का तथा ब्रह्मापुत्र तण्डि को गणेश्वर होने का वरदान भी रुद्रोपासना से मिला था।

शिव की पूजा मुख्यतः लिंगरूप में की जाती है। लिंगपूजा का प्रारंभ ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर होनेवाले विवाद की घटना के ठीक बाद से हुआ। लिंगार्चन से सभी देवों की पूजा हो जाती है क्योंकि लिंग की वेदी उमा का स्वरूप है और लिंग का निचला हिस्सा ब्रह्मा का मध्य का हिस्सा विष्णु का तथा अन्त का हिस्सा शिव का स्वरूप है। अतः लिंग में देवी सहित ये तीनों देव स्थित रहते हैं। अतः लिंगपूजन से सभी की पूजा हो जाती है। इस पुराण में लिंगनिर्माण, स्थापन तथा पूजन की विधि का विस्तार से विवेचन है। शिव की प्रतिमास्थापन तथा मन्दिरनिर्माण के फलों को भी विस्तार से बताया गया है। मंदिर बनानेवाला शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।

मंदिर की मरम्मत करनेवाले या टूट-फूट को सुधारनेवाले को मंदिर-निर्माता से ज्यादा फल मिलता है। इसी प्रकार अर्थ के अभाववाले व्यक्ति को मंदिर की सफाई एवं झाड़ू-पोछा, तथा लीपने जैसी सेवाएँ करने से भी हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। रोजी-रोटी मिलने के कारण भी अगर मंदिर में कोई सेवा करता है तो उसे महान् फल मिलता है।

पंचाक्षर मन्त्र के जपसंबंधी नियम इस पुराण में बताये गये हैं। इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, स्वर, बीज तथा शक्ति आदि की चर्चा की गयी है। इस मन्त्र के जप द्वारा ही सभी प्रकार के व्रतों आदि की समाप्ति तथा पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये। मन्त्र को किसी गुरु से प्राप्तकर यथासंभव रुद्राक्ष की माला से जप करे। जप के लिये उचित आसन तथा जप करते समय किन-किन नियमों का पालन करना चाहिये? इसका भी उल्लेख इस पुराण में किया गया है।

भगवान् शिव ही पशुपति हैं जो राग-द्वेषादि पंच क्लेशों के पाश से बद्ध जीवों को मुक्त करते हैं। पाशमुक्ति के अनेक उपायों जैसे भक्ति, ज्ञान, पाशुपत व्रत तथा पाशुपत योग आदि की यहाँ चर्चा की गयी है। कई प्रकार के पाशुपत व्रत तथा पाशुपत योगों की चर्चा भी की गयी है। अष्टांग पाशुपत योग(जो पतंजलि के योग जैसा है), मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग तथा महायोग की चर्चा भी हुई है। योगमार्ग में आनेवाले विघ्नों की भी विस्तृत चर्चा मिलती है। इस पुराण में कई उपयोगी स्तोत्रों जैसे दो प्रकार के सहस्रनाम स्तोत्र(तण्डिकृत तथा विष्णुकृत) आदि तथा महत्त्वपूर्ण तीर्थों का उल्लेख है। महत्त्वपूर्ण तीर्थों में काशी, श्रीशैल, केदार, रामेश्वर आदि हैं। काशी में मरनेवाले को एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है। पहले वह नरक में जाकर पापों का फल भोगेगा, तदनन्तर उसकी मुक्ति हो जायगी, उसे दूसरा जन्म नहीं लेना होगा।

मृत्युंजय मंत्र के प्रयोग तथा मृत्यु से बचने के लिये रुद्राध्याय के प्रयोग आदि की विधि इस पुराण में बतायी गयी है। आगे भस्ममाहात्म्य तथा शिवभक्तों का माहात्म्य बताया गया है। भक्त की निन्दा भगवान् की निन्दा तथा पूजा भगवान् की पूजा मानी गयी है।

अन्त में तीनों देवों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन करते हुए विष्णुजी को अनन्य शिवभक्त बताया गया है। उन्हीं के वर के प्रभाव से विष्णुजी तीनों लोकों में सबके द्वारा पूज्य बन गये। इस सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं तथा उन ब्रह्माण्डों में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र हैं। प्रत्येक कल्प में होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सृष्टिलीला को चलाने के लिये ये तीनों देव अलग-अलग कल्पों में सदाशिव के वरदान के प्रभाव से एक दूसरे से पैदा होते रहते हैं तथा एक दूसरे की भक्ति करते रहते हैं।

(प्रस्तुत लेख गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 5, क्लाइव रोड कलकत्ता-1 द्वारा 1960 में प्रकाशित 'लिंगपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

S S S S S S S S

तृष्णा की अजरता

जीर्यंति जीर्यतः केशाः दंता जीर्यंति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते।। (नार. महापु. पूर्वखण्ड 35/21)

बुढ़ापे में केश एवं दाँत बूढ़े हो जाते हैं। समय के साथ आँख एवं कान भी जीर्ण हो जाते हैं। परन्तु समय के साथ तृष्णा जवान होती जाती है।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता।
अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबंधिनि।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
यासौ प्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।।
अनाद्यंता तु सा तृष्णा ह्यन्तर्देहगता नृणाम्।
विनाशयति संभूता लोहं लोहमलो यथा।।

(स्कन्दमहापुराणाम्-माहेश्वरखण्ड-कौमारिकाखण्ड 46/40-42)

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ और सदा उद्वेग में डालनेवाली मानी गयी है। इसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं। तृष्णा का रूप भी बड़ा भयंकर है। वह सबके मन को बाँधनेवाली है। खोटी बुद्धिवाले पुरुषों के द्वारा बड़ी कठिनाई से जिसका त्याग हो पाता है, जो इस शरीर के वृद्ध होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणांतकारी रोग के समान है, उस तृष्णा का त्याग करनेवाले को ही सुख मिलता है। तृष्णा का आदि और अन्त नहीं है। जैसे लोहे की मैल लोहे का नाश करती है, उसी प्रकार तृष्णा मनुष्यों के शरीर के भीतर रहकर उनका विनाश करती है।